Chap-~~5~~ 5

पंचम अध्याय

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्रतिबिम्बित आर्थिक जीवन

अर्थ को पुरुषार्थ-चतुष्टय में स्थान मिलना, उसकी सामाजिक महत्ता का अभिसूचक है, अर्थात् भारतीय संस्कृति में मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में अर्थ को भी स्थान देकर उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है। हमारे शोध-प्रबंध के आलोच्य काल के समाज में भी सामाजिक प्रतिष्ठा के निर्धारण में वित्त की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका बनी रही। अर्थ का सर्वाधिक प्रभाव सामान्य जीवन या खान-पान, वस्त्राभरण आदि पर पड़ता है। इसके साथ-साथ वित्त के अभाव में न तो पारिवारिक जीवन शान्तिपूर्वक चल सकता है, और न ही राज्य की सुरक्षा के लिए सैन्य और सुरक्षाकर्मियों की ही व्यवस्थाएँ हो सकती हैं, और न धनापेक्ष धार्मिक कृत्य ही सम्पन्न हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि, समाज के प्रायः सभी पक्षों पर अर्थ-व्यवस्था का स्पष्ट प्रभाव रहता है। मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अपने पूरे जीवन में वित्त की आवश्यकता रहती है और उसीसे उसके सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। वो फिर जीवन-निर्वाह के लिए हो, शिक्षा के लिए हो, या अन्य किसी भी प्रकार के सामाजिक व्यवहार के लिए हो उसे धन की आवश्यकता रहती है और उसके अभाव में मनुष्य पंगु बन जाता है। अतः

सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक पक्ष का अपना एक विशिष्ट महत्व है। आर्थिक व्यवस्था की अपनी विशिष्ट अनिवार्यता और स्थिति है। वह हमारे सम्पूर्ण जीवन को नाना आरोहों-अवरोहों, उतारों-चढावों, गति-अवगति से संकुल बनाती है, जीविका के लिए आवश्यक होती है, धर्मानुष्ठानों को प्रेरित-प्रस्तुत करती है। शास्त्रों ने व्यंजित किया है कि पाप की पृष्ठभूमि में सामान्यतः भूख और प्रकारान्तर से अर्थ की ही अवस्थिति होती है।

किसी भी समय की आर्थिक स्थिति को समझने के लिए तत्कालीन कृषि व्यवस्था, व्यापार की स्थिति, अर्थोपार्जन के प्रमुख साधन, उद्योग-धन्धे, व्यावसायिक वर्ग, जातियाँ, आवागमन के प्रमुख साधन और नगर संरचना आदि को समझना जरुरी है। इस अध्याय में हम गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्रतिबिम्बित आर्थिक स्थितियों पर विस्तार से दृष्टिपात करेंगे और उसके आधार पर उस समय के आर्थिक जीवन को रेखांकित करने का प्रयास करेंगे।

(अ) समाज की अर्थ-व्यवस्था के मुख्य स्रोत :

कृषि : कृषि-प्रधान देश होने के कारण भारत की आधी से ज्यादा जन-संख्या कृषि पर निर्भर है। अतः हम कह सकते हैं कि आधी से ज्यादा जनसंख्या के जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन पुराकाल से कृषि ही रहा है और कृषि के लिए जिस प्रकार का वातावरण चाहिए भारत उस दृष्टि से अनुकूल प्रदेश है। जब हम गुजरात की मध्यकालीन परिस्थिति का विचार करते हैं तो, तत्कालीन समय में कृषि के साथ-साथ व्यापार का भी अपना पर्याप्त महत्व रहा है। कृषि और व्यापार दोनों क्षेत्रों में गुजरात का प्रदान अन्य प्रदेशों से विशेष रहा है।

कृषि व्यवस्था कई बातों पर निर्भर करती है - कृषि योग्य जमीन, समय पर वर्षा का होना, सिंचाई की व्यवस्था, फसल की रक्षा, अतिवृष्टि से नुकसान आदि। सबसे पहले जरुरी है कृषि योग्य भूमि। बंजर भूमि को सिंचाई, खादादि द्वारा उपजाऊ बनाया जा सकता है किन्तु 'ऊसर' भूमि वह हे जिसमें खार नामक खनिज पदार्थ होने के कारण कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। मध्यकालीन संत कवि दादू द्वारा अनेक पदों में ऊसर खेतों में बीज डालने अथवा सिंचाई करने को धन एवं परिश्रम का व्यय माना है -

कालर षेत न नीपजे, वाहै सौ वार ।

दादू दानां बीज का, क्या पचि मरै गवांर ॥[1]

गुजरात में कच्छ प्रदेश उसका उत्तम उदाहरण है, क्योंकि खेती की दृष्टि से वह कोई समृद्ध प्रदेश नहीं है, अधिकांश भूमि कृषियोग्य नहीं है और यह कम वर्षा का क्षेत्र है। 'अबुल फज़ल' के अनुसार "कच्छ की भूमि में बडे-बड़े जंगल हैं और अधिकांश भूमि कृषि योग्य भी नहीं है। कच्छ तो विशेषतः अपने घोड़ों, ऊँटों और बकरियों के लिए मशहूर है।"[2] किन्तु कुछ भूमि जो उत्पादन के लायक थी, उस पर खेती करके किसान अन्न भी पैदा करते थे और आय भी अर्जित करते थे। कुँअरकुशल कृत लखपतजससिंधु में एतद्विषयक उल्लेख मिलते हैं।[3] कुँअर कुशल ने जो वर्णन किया है, उस तथ्य की पुष्टि बोम्बे गज़ेटियर के द्वारा हो जाती है।[4]

खेती के लिए योग्य भूमि के अलावा अच्छी वर्षा का होना भी जरुरी है, जो वहाँ आवश्यकतानुसार पर्याप्त वर्षा हो जाने से अच्छी फ़सल (पैदावार) हो जाने का वर्णन 'लखपतजससिंधु' के कविने किया है।[5] कितनी बार अच्छी जमीन और वर्षा के बावजूद भी खेती नहीं होती थी, इसके लिए रुपक के माध्यम से दादू ने कहा है कि जब खेत में राम रुपी बीज ही नहीं बोया गया तो खेत में उपज कैसे होगी।[6] जबकि अच्छी उपज के लिए चाहिए की हृदयरुपी खेत में, प्रेमरुपी बीज को बोकर उसे लज्जारुपी खाद से ढककर रखा जाय, और जब पानी बरसता है, तो पाक अपने आप उग आता है।[7] सफल खेती के लिए मीठी (उपजाऊ) भूमि तथा मीठे पानी से सींचने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में अच्छी पैदावार संभव नहीं।

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, माया कौ अंग - 47
2. बोम्बे गज़ेटियर, (भाग-5), पृ. 216
3. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग-99
4. बोम्बे गज़ेटियर, (भाग-5), पृ.140

   "Lakhpat alone, from the cultivation of rice yielded a yearly revenue of about £ 20,000 (8 Lakhs Kories)
5. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग-94
6. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, निह क्रमी पतिव्रता कौ अंग - 67
7. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 33/15

दादू बहु गुणवंती बेलि है ऊगी कालर मांहि ।

सींचै षारे नीर सों तातें निपजे नाहि ॥ [1]

और अगर मीठी धरती है और मीठे पानी की व्यवस्था है तो बहुत अच्छा उत्पादन हो सकता है।

दादू बहु गुणवंती बैलि है, मीठी धरती वाहि

मीठा पांणी सींचिए, दादू अमर फल षाइ ॥ [2]

दादू के उपर्युक्त उद्धरणों के संदर्भ में यही कह सकते हैं कि उनकी जन्मभूमि गुजरात और कर्मभूमि राजस्थान रही है, जहाँ का पानी खारा और रणप्रदेश अधिक है, अतः इस समस्या के उपाय स्वरुप इस प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत करना बड़ा समीचीन जान पड़ता है।

कृषि योग्य भूमि, वर्षा का होना, इसके अतिरिक्त खेती के लिए अति आवश्यक है, सिंचाई व्यवस्था। दादू ने खेतों में वर्षा के जल की नालियों द्वारा खेतों की सिंचाई की व्यवस्था की बात कही है -

हरि जल वरिषे बाहिरा, सूके काया षेत ।

दादू हरिया होइगा, सींचणहार सचेत ॥ [3]

जहां सिंचाई की व्यवस्था न हो और समय पर जरुरी वर्षा भी न हो तो उससे कई बार फसल नष्ट हो जाती है। किन्तु जहाँ सिंचाई की व्यवस्था होती है, वहाँ सूखी हुई वस्तुएँ भी हरी-भरी हो जाती हैं।

जे साहिब सींचे नहीं, तौ बेली कुमिलाई।

दादू सीचैं सांइयाँ, तौ बेली बधती जाइ ॥

X X X X X X X

दादू सूका रुंषड़ा, काहे न हरिया होइ।

आपैं सींचैं अमीरस, सूफल फलिया सोइ ॥ [4]

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, बेली को अंग - 10
2. वही- 11
3. वही- 8
4. वही - 3,5

आलोच्य काल में सिंचाई की व्यवस्था कई प्रकार से उपलब्ध कराई जाती थी। पीने के पानी और सिंचाई के लिए कुओं की आवश्यकता रहती थी, लेकिन आज की तरह वैज्ञानिक तकनीक के अभाव के कारण जमीन के नीचे पानी कहाँ है, इसका पता लगा पाना मुश्किल होता था। इसका पता हमें 'अखा' के दोहों आदि से हो जाता है, जहाँ कुआँ खोदते थे वहाँ जल न निकलकर दूसरी जगह मिलता था, अर्थात् बड़ी मुश्किल के बाद जहाँ खोदते, वहाँ पानी निकलता था -

ज्यूँ कुवा खोदतें सीहीर आवे,

आड़ा अंवला नीर मिले; [1]

कुओं और सरोवरों में से रहेंट के द्वारा पानी निकालकर पिलाने का वर्णन रुपक के माध्यम से प्रवीण सागर के ग्रंथकार ने किया है। बिरहरुपी जल से सरोवर भरा हुआ है। वहाँ स्मृतिरुपी घटियंत्र लगा है, लाज रुपी घटिकाएँ गुणरुपी रज्जु से बंधी हुई हैं। विचाररुपी बैल घुम रहा है, उस रहट में फलकों की मालाएँ बंधी हुई हैं , उसमें नेत्ररुपी घटिकाएँ भरती और खाली होती रहती हैं -

अंब अताग निबान भरे ब्रह, संमृति तत्र संवार धरें ।

व्रीड को मंच बध्यो गन के गुन, बैल विचार फिरे बो करें ।।

कांति कि माल कसी बरुनी व्रह, नैन धरी सु भरें उबरें ।[2]

कुओं, सरोवरों के अतिरिक्त बाँध बाँधकर पानी को रोक कर भी सिंचाई की जाती थी। इसमें कई जगहों पर नीचे स्थानों पर बाँध बनाकर पानी को रोका जाता था, संभव है कि वर्षा के जल को भी बाँध बाँधकर एक जगह पर एकत्रित किया जाता होगा, जिसका वर्णन दादू ने पंजाबी भाषा में मन को संयम में रखने की शिक्षा देते हुए उमड़ती जल-राशि को बाँध बाँधकर नियंत्रित करने की उपमा देकर किया है -

नीर निवांणा ठाहरै, तिम साची वांधौ पालो रे । [3]

---

1. अक्षय रस - संपा. डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, झूलणा - 99
2. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर - 33/16
3. दादूदयाल ग्रंथावली -संपा. परशुराम चतुर्वेदी, राग धनाश्री - 18/3

अतः हम कह सकते हैं कि सिंचाई को मध्यकालीन कवियों ने अतिआवश्यक माना है। सिंचाई के बिना पाक के नष्ट होने और सिंचाई से पाक के विकास होने की बात कही है -

जे साहिब सींचै नहीं, तौ बेली कुमिलाइ ।

दादू सींचैं सांईयाँ, तौ बेली बधती जाइ ।। [1]

इन सब बातों के अतिरिक्त अच्छी खेती के लिए कुछ छोटी-छोटी चीजों का भी ध्यान रखना पडता है। 'अखा'ने एक जगह पर ऐसी ही एक बात का निर्देश किया है, खेत में फसल के साथ-साथ घास-फूस भी उग आता है, जो किसी काम में नहीं आताऔर ऊपर से फसल को बढने से रोकता है। इसलिए उसे निंदना (निंदामण) निराना काटना आवश्यक है -

निंदामण उग्या अखा खली न जांणे खेत । [2]

उपर्यक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि कृषि उत्पादन का मूलाधार समय पर वर्षा हो जाना तथा छोटी-मोटी सिंचाई व्यवसथा से था, जिसके अभाव में प्रायः दुर्भिक्ष पड़ जाते थे। ऐसा ही एक भयंकर दुष्काल संवत् 1687 में गुजरात में पड़ा था, जो सत्यासीया दुष्काल के नाम से प्रसिद्ध है। मध्यकालीन जैन कवि 'समयसुन्दर' ने उसकी दयनीयता एवं भयंकरता का सजीव वर्णन "सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी" में किया है। अकाल के कारण अन्नाभाव, समाज की दारुण स्थिति, लाशों के ढेर और वातावरण में फैली दुर्गंध, संत, साधु एवं तमाम प्रजाजन की त्राहि-त्राहि पुकार को कवि ने अभिव्यक्ति प्रदान की है। तत्कालीन सामाजिक दारुणता का वर्णन सरल राजस्थानी भाषा में कवि ने किया है -

"मांटी मुंकी बईर, मुक्या बइरै पणि मांटी,

बेटे मुक्या बाप, चतुर देतां जे चांटी ।

भाई मुकी भइण, भइणि पिण मुंक्या भाइ,

अधिको व्हालो अन्न, गइ सहुं कुटुम्ब सगाइ ।"[3]

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, बेली को अंग - 3
2. अक्षय रस - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, संसे परिहार - 9
3. गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन - डॉ. हरिप्रसाद गजानन शुकल, पृष्ठ 231 से उद्धत

इसी प्रकार दुर्भिक्ष के समय एक बार सूरत शहर भी अस्त व्यस्त हो गया था। हजारों लोग बिना अन्न के तड़प रहे थे। तब आपसी भेदभाव भूलकर लोगों को भोजन कराना, उनके कष्टों को सुनना, आश्रम में आश्रित अकाल के शिकार बने हुए लोगों के लिए 'संत निर्वाण साहब' ने विविध प्रकार की व्यवस्था की थी। उनके शिष्य सदा सहायता के लिए तत्पर रहते थे। इसके उल्लेख 'निर्वाण साहब' के भक्तों द्वारा रचित रचनाओं में मिलते हैं।[1]

मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में वर्णित दुर्भिक्ष के वर्णनों की पुष्टि इतिहास ग्रंथों से भी हो जाती है। अब्दुल हामिद लाहोरी ने सन् 1630-31 ई. में गुजरात में पड़े दुर्भिक्षके विषय में लिखा है कि "लोग दूसरे मनुष्यों का ही नहीं, अपनी संतान तक का मांस खाने लगे थे।"[2] अन्य एक तत्कालीन इतिहासकार की डायरी में गुजरात के दुर्भिक्ष के बारे में विवरण मिलता है कि, "भूख के कारण हजारों व्यक्ति अपने बच्चों को खा गये। दहीं का चूर्ण आटे में मिलाकर प्रयोग किया गया। कुत्तों का गोश्त खाद्य-सामग्री बन गया।"[3]

कृषि-उत्पादन : आलोच्य युग का मुख्य उद्योग कृषि था। लेकिन कृषि पूर्णतः प्राकृतिक उपादानों पर आधारित थी। गुजरात के मध्यकालीन कवियों के काव्य में वर्णित अनाज और खाद्यान्न किस प्रकार दृष्टिगत हुए हैं, तथा तत्कालीन समय में प्रचलित विभिन्न मेवों, मसालों का वर्णन किसा प्रकार हुआ है, इस पर दृष्टिपात करना भी समीचीन होगा।

किसान किस प्रकार खेती करते थे, और कौन-कौन सी बातों का ध्यान रखते थे। इसका अवलोकन पहले किया जा चुका है। प्रो. दयाशंकर शुकल के संपादकत्व में प्रकाशित 'लखपति-जससिंधु' की भूमिका में 'लखपति-जससिंधु' के रचनाकार कुँअर कुशल की एक अन्य रचना 'सिंहटपनिशानी' का संदर्भ देते हु लिखा गया है कि उस समय के किसान निम्नलिखित अन्न, धान्यों आदि का उपार्जन करते थे -

---

1. संत निर्वाण साहब - लेखक - माणेकलाल राणा, पृ. - 255,261
2. एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया - डॉ. आर.सी. मजुमदार एवं अन्य, पृ. 465
3. मुगलकालीन भारत - लेखक - आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - पृ. 356

जौ गेहूँ चामर मूँग बाजरी उडद तूर उदारि ।

हुन उडद तूर उदारि चौरे, ज्वार मोठ सजोय ।

कहि कुलथ कान रु चिने कितने मटर मक्की होय ।

हुन मटर मक्की होय मिसरी खांड़ गुड़ घृत हाट ।

अहिफेन भाँति तमांख और गेज बजारनि हाट ।[1]

इसके अतिरिक्त किन खाद्यान्नों एवं वस्तुओं की खेती की जाती थी - उसका उल्लेख भी मिल जाता है। गुजरात में गेहूँ, चावल, कपास, केला, ईख, तम्बाकू आदि की खेती प्रमुख रुप से की जाती थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात में काफी पहले से ही खाद्यान्नों के अतिरिक्त नकदी प्राप्त करने वाली फसलें (Cash Crop) उगाई जाती थीं।

गहूं गयो वांसे जड़े, उछु जडे ज्यम कास ।

कननी गइ सींगे जडे त्यम राम जडे पोता पास ।। [2]

तो दादू ने कण-गेहूँ को छानने, बीनने तथा उससे आटा बनाने की विधि का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है -

पीसे ऊपरि पीसिए, छांणौ ऊपरि छांणि ।

तो आतम कण ऊबरै, दादू असी जांणि ।। [3]

'अलइट्रीसी' ने खंभात प्रदेश में गेहूँ की खेती की बात कही है।[4] दादू ने कण-गेहूँ का उदाहरण प्रस्तुत करके गेहूँ के आटे और मैदे की चर्चा ज्ञानमार्गीय भक्ति-सम्बन्धी संदर्भ में समझाते हुए कहा है कि जब सन्त ज्ञान और आत्म-साधना के द्वारा खून का पानी तथा अस्थियों का आटा बना लेते हैं तभी उनको अपने अभिप्रेत सांई की प्राप्ति होती है -

---

1. लखपतिजससिंधु - संपा. दयाशंकर शुकल - भूमिका, पृ. xii से उद्धत
2. अक्षय रस - संपा. डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह - अथ जाग्रत अंग- 1
3. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी - जीवित मृतक को अंग - 39
4. गुजरात नो इतिहास (भाग-2) - अनुवाद - छोटुभाई नायक, पृ.97

सांई कारणि मास का, लोही पांणी होइ ।

सूकै आटा अस्त का, दादू पावै सोइ ।।[1]

आगे दादू गेहूँ में से बनते मैदे का संदर्भ प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि प्राणी का अन्त तभी संभव है जब उसके तन और मन की प्रवृत्तियों को मैदा के समान महीन पीसकर विचार-रुपी छलनी से छाना जाय। इसके बिना प्राणी का अन्त नहीं हो सकता -

तन मन मैंदा पीसि करि, छांणि ल्यौ लाई ।[2]

जहाँ गेहूँ विषयक इतने प्रचुर मात्रा में निर्देश प्राप्त होते हैं, वहाँ चावल विषयक वर्णन बहुत कम एक-दो स्थान पर ही प्राप्त होते हैं। अखा ने एक जगह इसका वर्णन किया है -

हूं के थोथे ज्युं ज्युं कहाड़े, तब चावल अपना रुप देखाड़े[3]

जबकि कपास का उल्लेख दादू ने उससे सूत बनाने की विधि के रुप में किया है -

अंतकालि हरि जौहरि, दादू सूत कपास ।। [4]

गुजरात के मध्यकालीन कवियों के काव्य में ईख की खेती और उससे बनती वस्तुओं के वर्णन आये हैं। ईख को संस्कृत में इक्षुः कहा जाता है। भारत में प्राचीन काल से ईख की खेती प्रचलित है। 'डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल' ने प्राचीन काल में ईख की फसल उगाने के साथ-साथ उसके वन होने का भी उल्लेख किया है।[5] ईख के रस से गुड़, सक्कर, और खाँड बनाने का उद्योग प्रचलित था -

धरि धरि घटि कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ ।[6]

इसके अतिरिक्त ईख से शराब भी निकाली जाती थी। सन्त कवि दादू ने ईख रस को सन्तों का पेय पदार्थ माना है। तथा मिश्री बनाने का उदाहरण अपने पदों में दिया है।

मीठे माहैं राषिए, सो भी मीठा होइ।

दादू मीठा हाथि ले, रस पीवै सब कोई ।। [7]

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली- संपा. परशुराम चतुर्वेदी, जीवित मृतक कौ अंग - 37
2. वही- 38
3. अक्षय रस - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, जकड़ी- 39
4. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, साच कौ अंग - 122
5. पाणिनिकालीन भारत - डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ.-208
6. दादूदयाल - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, गुरुदेवजी कौ अंग - 93
7. वही-परचा का अंग- 173

दादू ने बाँस की सींकों पर मिश्री जमाई जाने का वर्णन भी किया है। अतः मिश्री के संसर्ग से बाँस भी महँगा हो जाता है -

मिसरी माँहै मेलि करि, मोलि बिकाणां बंस ।

यूं दादू महंगा भया, पार ब्रह्म मिलि हंस ॥[1]

आगे अखा के पद में ईख के रस से गुड़, खाँड़ बनाने के वर्णन में कोल्हू का उल्लेख आया है, इसी प्रकार उन्होंने तेल पेरने या तेला निकालने के लिए 'घानी' का उल्लेख किया है -

ममता तेली, मन वृषभ, माया - घाणी फेर ।

अखा पिलाये कामना और होता जाय उमेर ॥[2]

उन्होंने आगे अपने पद में घानी के बैल और मनुष्य के बीच समानता दर्शाते हुए वर्णित किया है कि घानी में जैसे बैल चलता है, उसी प्रकार मनुष्य संसारचक्र में बार-बार जन्म लेता है -

नहीं तो अटके भव बीषे ज्यु तेली बेल की रीत्य ।[3]

अन्य संदर्भों जैसे किसान साल में कितनी फसल उगाते थे, उनसे उपज का कितना हिस्सा कर के रुप में लिया जाता था, किसान अपने अनाज को कहाँ बेचने जाते थे, धान्य के बदले में किसी प्रकार का विनिमय होता था, इन सब बातों के बारे में गुजरात के मध्यकालीन कवि प्रायः मौन रहे हैं। किन्तु इतना अवश्य है कि दादू ने एक स्थान पर किसानों पर हो रहे अत्याचार का वर्णन किया है। ग्राम शासन के लिए ग्राम-पंचायतें और लगान की वसूली के लिए एक मुखिया होता था। इन दोनों के साथ मिलकर अधिकारी प्रायः किसानों पर आर्थिक अत्याचार करते थे। इस प्रकार के दुहरे शासन से त्रस्त किसानों की करुणता का पता चलता है। जिसका स्पष्ट चित्र दादू ने प्रस्तुत किया है -

जोर करै, मसकीन सतावैं, दिल उसकी मैं दर्द न आवै ।
साँई सेती नांही नेह, गर्व करै अति अपणी देह ॥
दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ ।
दोई राजी दुख दुंद मैं, सुखी न बैसै कोइ ॥[4]

---

1. दादूदयाल - संपा. परशुराम चतुर्वेदी - परचा का अंग - 172
2. अक्षय रस -संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह -अथ माया को अंग- 1
3. वही- दुर्मति अंग-3
4. संत सुधा-सार - संपा. वियोगी हरि, (स्वामी दादूदयाल), साच को अंग -3, माया को अंग -4

व्यापार : प्राचीनकाल से ही खेती के साथ-साथ गुजरात में व्यापार का भी पर्याप्त महत्व रहा है। छोटे से लेकर बडे-बड़े व्यापारी अपना व्यापार गुजरात में रहकर करते रहे हैं। वस्तुतः गुजरात भारत का एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र रहा है। व्यापारिक विकास के लिए जरुरी तमाम प्रकार की सुविधाएँ यहाँ पहले से प्राप्त होती रही हैं। एक तो गुजरात की भौगोलिक स्थिति, और यहाँ के शासक सिद्धराज जयसिंह से लेकर लखपतिसिंह जैसे राजाओंने व्यापार के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया है। अन्य अनुकूल वातावरण में गुजरात का 1600 कि. का समुद्री तट प्राप्त है जो विदेश व्यापार के लिए अति महत्वपूण साबित हुआ है।

गुजरात के मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में कहीं पर प्रत्यक्ष तो कहीं पर अप्रस्तुत विधान के रुप में विदेशी एवं स्वदेशी व्यापार के उदाहरण मिलते हैं। एतद्विषयक उदाहरणों में विदेशी व्यापार के लिए जिस मार्ग का उपयोग किया जाता था, उसके जलमार्ग होने की सूचना प्राप्त होती है -

ज्यूं नीर विषे नौका रहे, तो बहे कोटि मण भार ।
त्यम नारायणमां नर रहे, ते सहित तरे संसार ॥[1]

जबकि स्वदेशी व्यापार का मार्ग अधिकतर थलमार्ग रहा होगा। समुद्र तथा नदी में बड़ी तथा छोटी दोनों प्रकार की नावों तथा जहाज से यात्रा के साथ-साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक उपभोक्ता वस्तुओं के परिवहन की सूचना प्राप्त होती है। व्यापार प्रायः आठों दिशाओंमें विस्तरित था, ऐसा अनुमान किया जा सकता है -

ज्ञान उदय कैवल्य अखा ! रिधसिध न्यारी बात ।
नौका ते खेवा बड़ा आठुं दिशा बहात ॥[2]

सन्त कवि दादू ने छोटी नाव में बैठकर समुद्र पार करने में आनेवाली कठिनाइयों का वर्णन किया है -

दादू नांव चढाई करि, ले पार उतारै ॥ [3]

---

1. अक्षय रस - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह - अथ सहेज अंग-14
2. वही - अथ उदय कैवल्य अंग - 14
3. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी - गुरुदेवजी कौ अंग -10

इस संदर्भ में दादू समझाते हैं कि संसार रुपी समुद्र में नाव से पार पाना बड़ा कठिन है, किन्तु जो खेवनहार चतुर है तो पार लगा देता है -

स्यंध परोहन सिंध जल, भौसागर संसार ।

राम बिना सूझै नहीं, दादू षेवनहार ॥ [1]

अखा की रचनाओं में नौका के विभिन्न पारिभाषिक शब्दों एवं जलयात्रा से संबंधित अनेकशः उल्लेख मिलने[2] के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि अखा ने जल यात्रा भी की होगी , क्योंकि उन्होंने जहाज (नाव) के लिए अनुकूल वायु की आवश्यकता पर भी विचार व्यक्त किया है -

सिन्धु में चलत नाव, जात कोई बंदरुँ ।

सकल वायु को जोर ! ऐसे मैं हि संचरुँ । [3]

विदेशी व्यापार में आयात-निर्यात होनेवाली चीज-वस्तुएँ सम्बन्धी जानकारी भी प्राप्त होती है। अखा के एक पद से यह जानकारी प्राप्त होती है कि तत्कालीन समय में लंका से स्वर्ण का आयात होता था -

के लंका ते आइयां के हुवा लोह का हेम ।

सरीखा रंग मोल कू जे पाया नीत्य खेम ॥ [4]

विदेशी व्यापार के साथ-साथ स्वदेशी व्यापार के प्राप्त वर्णनों के अनुसार व्यापार करनेवालों को दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है - एक हैं बडे व्यापारी दूसरे हैं छोटे व्यापारी। 'साह' शब्द बड़े व्यापारियों के लिए प्रयुक्त किया गया है, जिन्हें साहूकार भी कहा गया है। यह साहुकार शब्द उनकी व्यापारिक श्रेष्ठता एवं समृद्धि का द्योतक है। यह लोग बड़ा व्यापार (लाखों का) करते थे और छोटे व्यापारियों (बनिज) को व्यापार करने के लिए पैसा देते थे -

दादू टोटा दाल दी, लाषौं का व्यौपार

पैका नांही गांठडी, सिरे साहूकार ॥ [5]

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी - बीनती कौ अंग -36
2. अक्षय रस - संपा. डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, असत को अंग- 4
3. वही- भजन - 3
4. वही- राम रसिया अंग - 24
5. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, साच कौ अंग -100

बड़े व्यापारी सामान्य वणिक को सौदा करने के लिए दूसरे नगरों में भेजते थे। छोटे व्यापारी पूर्णतः बड़े व्यापारियों पर आश्रित थे क्योंकि उसकी आज्ञा का अनादर करने पर व्यावसाय में हानि की संभावना रहती थी। अतः वणिक साहूकार के बताये हुए मार्ग पर चलकर नीतिगत सौदा करता था -

साहि पठाया वणिजन आया, जिनि डहकावै रे ।
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे ॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे ।
दादू मेला होई सुहेला, सो कछु कीजी रे ॥ [1]

बडे व्यापारी शहरों में रहकर अति कीमती वस्तुओं का व्यापार करते थे।[2] रोजमर्रा की उपयोगी वस्तुओं का थोक-व्यापार इन्हीं के हाथों में था -

बरबने च्यार असिये बजार, बनि सूतबंध विस्तार सार ॥
मंडई पास मानिक (जु) चौक । लहि फिरत तहाँ धनवान लोक ॥ [3]

संपूर्ण बाजार व्यवस्था के क्रय-विक्रय पर उनका ही आधिपत्य होता था। क्योंकि उनकी दुकानें सभी तरह के सामानों से भरी पड़ी होती थी, और लोग अधिकाधिक सामान से भरी दुकानों में ही खरीदारी करने जाते थे जो खाली होती थीं, वहाँ कम ही लोग जाया करते होंगे --

दादू भांडा भरि धरि बस्त सौं, ज्यूं महंगे मोल विकाइ।
षाली भांडा वस्त बिन, कौडी बदले जाइ ॥ [4]

साथ-साथ दादू ने बनिज के द्वारा अपनी दुकान के दरवाजे खोलकर व्यापार करने का उल्लेख किया है -

राम नांव कौं वणिजन बैठे, तार्थैं मांड्या हाट ।
साई सों सौदा करैं, दादू षोलि कपाट ॥ [5]

इन छोटे-बड़े व्यापारियों के व्यापार संबंधी उपर्युक्त वर्णनों से एक तथ्य सामने आता है कि नगरों का व्यापार बडे व्यापारियों के हाथ में होता था और उन्हीं से छोटे व्यापारी अपना व्यापार चलाने के लिए जरुरी पैसे और सामान लेते थे, जो प्रायः छोटे नगर या गाँवों में व्यापार करते होंगे। अतः एक बात स्पष्ट होती है कि संपूर्ण बाजार व्यवस्था बड़े व्यापारियों के हाथों में थी और छोटे व्यापारी उन पर पूर्णतः आश्रित थे।

---

1. दादूदयाल - संपा. परशुराम चतुर्वेदी - राज धनाश्री -20/3,4
2. अक्षय रस - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, राम परीक्षा अंग- 7,9,11,12,15,17
3. लखपतिजससिंधु - संपा. दयाशंकर शुक्ल, द्वितीय तरंग- 22
4. दादूदयाल - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, भैष कौ अंग -6
5. वही -साच कौ अंग -150

व्यापार विषयक अन्य वर्णनों में उन मँहगी वस्तुओं के व्यापार जिसमें लाभ ज्यादा होता है, उसका वर्णन अखा ने किया है -

राम रतन का पारखु मुद्ल खात न खोट ।
अखा बेजो भूमिको खाली परत न चोट ॥

राम रतन का पारखु तर्तु पावत लाभ ।
अखा मीटाया आपकु दुझन लाग्या आभ ॥ [1]

अखा के लगभग 150 वर्ष बाद हुए स्वामीनारायण सम्प्रदाय के प्रमुख कवि ब्रह्मानंद के एक पद में अखा के ज्यादा लाभ कमाने संबंधी वर्णन का समर्थन होता है। ब्रह्मानंद ने समय-सूचकता से लाभप्रद व्यापार कर अधिक नंफा कमा लेने की बात इस प्रकार कही है -

तूं साचा वेपारी रे, तूं मनवा साचा वेपारी ।
ले ले लाभ अपारी रे, मनवा तूं साचा वेपारी ॥
बार-बार न मिले या मोसम,.....
अबकी खेप पार जो उतरे, तो होत नफा अति भारी ।
'ब्रह्मानंद' अचल रही आवे, सदगुरु से साहूकारी ॥ [2]

गुजरात के गौरवग्रंथ 'प्रवीणसागर' में भी एतद्विषयक उक्तियाँ मिलती हैं, ग्रंथकार ने कर्ज लेकर धन कमाना, खूब धन की प्राप्ति करना, तो कभी मूल धन गवाँ देने की बात कही है -

को दिन पैसा पूरन पायें, को दिन गांठि के गर्थ गुमायें ।
को दिन कर्ज करी धन लहियें, [3]

'प्रवीणसागर' में किए गये इस प्रकार के वर्णन से एक बात स्पष्ट होती है कि तत्कालीन समय में व्यापार करने के लिए कर्ज लिया जाता था और इस प्रकार के व्यापारिक साहस के द्वारा धन भी कमाया जाता था। इसमें असफल रहने पर कभी नुकसान भी सहन करना पड़ता था। सन्त कवि दादू ने भी व्याज पर रुपये के लेन-देन के प्रचलन पर अपने विचार को प्रदर्शित करते हुए अधिक लाभ के लालच में महाजन को मूल धन गँवा देने की संभावना के प्रति सचेत करते अधिक ब्याज के लोभ को मूल पूँजी को गवाँ बैठने का कारण बताया है -

नैनहुँ बिन सूझे नहीं, भूला कतहूं जाइ ।
दादू धन पावै नहीं, आया मूल गंमाइ ॥ [4]

---

1. अक्षय रस - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह; राम परीक्षा अंग- 12,15
2. गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी - डॉ. अम्बाशंकर नागर - ब्रह्मानंद स्वामी - 11
3. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर -74/17
4. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, परचा का अंग -33

अतः मूल धन को खो बैठना और लाभ के मद में जो बहकता है वे दोनों ही मूर्ख हैं। इसीलिए नीतिगत व्यापार करके 'थोड़े में संतोष' की भावना वाले व्यापारी अपनी मूल रकम को बचा पाते हैं, जिन्हें अखा ने सफल व्यापारी माना है –

राम रतन का पारखु मुद्ल खात न खोट ।
अखा बेजो भूमिको खाली परत न चोट ।। [1]

उपर्युक्त ब्याज के लेन-देन संबंधी विवरणों में कभी मूल-धन भी गँवा देने संबंधी वर्णनों से यही फलित होता है कि तत्कालीन समय में लोगों में वित्त व्यवहार के प्रति विनिमय शुद्धता का अभाव था।

व्यापार विषयक अन्य वर्णनों में सस्ती वस्तु को मँहगी वस्तु के साथ मिलाकर बेचने की बात को दादू ने बड़ी कलात्मकता से समझाया है कि जब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है, तो उसका मूल्य भी बढ़ जाता है।

मिसरी माहैं मेलि करि, मोलि विकाणां बंस ।
यूं दादू महंगा भया, पार ब्रह्म मिलि हंस ।। [2]

गुजरात में व्यावसायिक दक्षता और व्यापार-बुद्धि की जो सामान्य प्रवृत्ति दिखलाई देती है, वह आज की नहीं, सदियों पुरानी है। इस बात का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि दादू जैसा संत, जिसे व्यापार आदि से कुछ लेना-देना नहीं था, वह भी व्यापार, वाणिज्य आदि के गुरु-मंत्रों से भलीभाँति परिचित था।

कुछेक दृष्टांतो से बाजार में होनेवाली ठगाई के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। 'प्रवीणसागर' में एक स्थान पर कवि ने रुपक के माध्यम से कहा है कि माँगरुपी बाजार में जाकर केशरुपी मयूर नें (ठगारों ने) ठग लिया है –

मांग बजार किधों चढ़िके, यह केश मयूर ठग्यो हे ठगारो ।[3]

अखा की रचनाओं में भी एकाध उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिसमें स्वर्णकार स्वर्ण में अन्य धातु मिलाकर कंचन (सोने) की गुणवत्ता को नष्ट कर ग्राहकों को ठगते थे –

---

1. अक्षय रस – संपा. डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, राम परीक्षा का अंग- 12
2. दादूदयाल ग्रंथावली – संपा. परशुराम चतुर्वेदी, परचा का अंग –172
3. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर –59/26

दीया मलामां रांगका कंचन कीया खराब ।
खाक कर्य खोहोया अखा त्युं गमाया आप ।। [1]

अन्य एक वर्णन में अखा ने जिस व्यक्ति को तांबा, पित्तल आदि धातुओं में से स्वर्ण बना सकने की सिद्धि प्राप्त है, उसे बड़ा और यह सिद्धि जिसे प्राप्त नहीं है, उस रसायनी को भाग्यहीन कहा है -

रध्यकर बडा रसायनी, सत्ता बड़ो राजन ।
नैरासी साधन बड़ा, अखा अनुभे बड़ो ज्ञान ।। [2]

X X X X X X

बीषे ओ सतसंग करे तो बीच पड़े बीधात ।
ज्यों भाग्यहीना रसायनी अखा न धाते धात ।। [3]

कहा जाता है कि अखा सोनार थे, ऐसा अनुमान है कि वह स्वर्ण बनाने की पूरी विद्या से परिचित रहे हैंगे। अतः यहाँ उनका तात्पर्य स्वर्ण में अन्य धातुओं को अनिवार्य मात्रा में मिलाने की जानकारी से है। वस्तुतः रसायन से स्वर्ण बनाने की संभावना ठग विद्या या अंध-विश्वास को ही प्रगट करती है, और इसके लोभ में पड़कर गाँठ का धन भी खो बैठने के प्रति अखा ने सावधान किया है, क्योंकि आजकल हम कभी हमारे अडोस-पड़ोस में तो कभी समाचार पत्र में सुनते-पढ़ते हैं कि सोने को दुगना करने के लोभ में या नया पानी चढ़ाने के लोभ में किसी ने अपना खुद का सोना भी गुमा दिया ।

जहाँ तक मिलावट का प्रश्न है, वह तत्कालीन समय में अवश्य होती थी। इस बात को नकारा नहीं जा सकता। अखा ने स्याही में नील के पानी को मिलाने की बात कही है -

आप कोई और उपासन और ज्युं,
नील को नीर मसी मध्य साने । [4]

व्यापार में तत्कालीन समय में प्रचलित इस प्रकार की प्रवृत्तियों के कारण ही शायद अखा ने अप्रत्यक्ष रुप से धंधे में ईमानदारी का व्यवहार करने और सही-सही नाप-तोल करने की सलाह दी है। क्योंकि उनकी नाप-तोल में काफी अंतर निकलता था -

---

1. अक्षय रस - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, क्रम जड अंग - 6
2. वही-अनभे अंग - 2
3. वही-लंपट अंग - 11
4. वही-संतप्रिया - 18

तोल तफावत हो रध्या ।
ढूंढ्यां ठौर न पावे ।

XXXXXXX

नझरे न आवे निरखतां
कारीगर कोई ।[1]

उद्योग-धन्धे :- मानव एक सामाजिक प्राणी है, और अपनी रोजमराँ की जिंदगी के लिए उसे-दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है । किसी भी व्यक्ति को जीवन के हरक्षेत्र में दक्षता एवं कार्यक्षमता प्राप्त नहीं होती । इसलिए उसे कईबार दूसरों पर अवलंबित रहना पड़ता है, और उसे दूसरों से सहायता लेनी पडती है, इस प्रकार एक दूसरे पर निर्भर होने का क्रम चल निकलता है। यदि किसी व्यक्ति को किसी वस्तु को बनाने की कला ज्ञात है तो वह वह अपनी आवश्यकता से अधिक सामग्री बनाकर दूसरों को लाभान्तित कर सकता है । समाज के संचालन के उसी क्रम में उद्योग-धन्धों का विकास हुआ होगा । व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक जरुरी सामग्री का उत्पादन करके दूसरों के लिए भी उपभोकता सामग्री का निर्माण कर सकता हैं । यही उपभोकता सामग्री के निर्माण के क्रम में पहले छोटे-उद्योग जिन्हें हम लघु-उद्योग भी कह सकते है और बाद में बड़े-उद्योग की स्थापना हुई होगी । भारत प्राचीन काल से ही वस्त्रों, आभूषणों, अपने हस्त उद्योगों में चित्रकारी, मीनाकारी, स्थापत्य कला आदि के लिए देश-विदेशों में प्रसिद्ध है।

जब हम गुजरात के संदर्भ में इसकी बात करते हैं, तो उसका महत्व बढ़ जाता है। गुजरात प्राचीनकाल से ही भारत का एक प्रमुख व्यापारिक प्रदेश रहा है। गुजरात को व्यापार, उद्योग-धन्धे के लिए जरुरी भोगोलिक वातावरण प्राप्त है, और उसमें भी तत्कालीन शासकों की ओर से उद्योग-धन्धे के लिए व्यापक प्रोत्साहन मिलते रहे हैं। सब से बड़ी बात गुजराती प्रजा की व्यापारी मानसिकता है। गुजरात के मध्यकालीन कवियों के काव्य में एतद्विषयक वर्णन मिल जाते हैं। वस्तुतः उद्योग-धन्धे के व्यापाक प्रचार के उल्लेख मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में मिलते हैं। उद्योग-धन्धे का विकास मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में विधिवत नहीं हो पाया था, लेकिन मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में उद्योग-धन्धे के लिए जरुरी तमाम प्रकार की सुविधाओं और मूलभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ऐसे कई प्रयत्न किये गये, जिससे उसका विकास हो।

---

1. अक्षय रस, संपादक - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, भजन- 4

प्राचीनकाल से ही कच्छ हस्तकला कौशल के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की लोककला के अन्तर्गत दीवालों पर की गई चित्रकारियाँ चर्चित रही हैं। यहाँ के भित्तिचित्र विशिष्ट महत्व के हैं।XXX भुज का 'आयनामहल' तथा अंजार मेंकमड़ों के बँगले सुन्दर चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध हैं।XXX कपड़ों पर सुंदर काँच के टुकड़ों को टाँककर अनेक आकर्षक चित्र बनाकर प्रस्तुत करने का कौशल तो लगता है, इन्हीं लोगों के भाग में पड़ा है। यह कला देश-विदेश सभी जगह सराही गई है। ऐसे वस्त्र बेचकर कच्छी कलाकार अपनी जीविका अर्जित करते हैं।[1] मध्यकालीन सन्त कवि अखा की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उन दिनों काँच पर चित्र बनाये जाते थे-

ज्यु आरसी पर चितर लिखा,

रँग रुप देखा, मूल तेज गया, [2]

'प्रवीणसागर' में किए गये वर्णन से भी इस बात की पुष्टि होती है कि काँच के बर्तन पर चित्रकारी का उद्योग था -

रंमहि रंग रहयो मिलके अति, [3]

और यह चित्रकारी इतनी अच्छी होती थी कि कितना भी माँजने या घिसने पर भी नहीं जाती थी -

मंजत हो चटकी नहिं छूटे ।

भेद कछू न परे परसें कर, पास प्रसूत खरे नहिं खूटे ॥ [4]

काँच पर चित्र बनाने के साथ-साथ सोने चाँदी के आभूषणों पर कच्छी कलाकार मीनाकारी का काम भी करते थे। महाराव लखपतिजी के समय अर्थात् अठारहवीं शताब्दी के मध्य में उनके सुविख्यात इंजीनियर रामसिंह मालम ने एक ऐसी कार्यशाला स्थापित की थी, जहाँ सोने-चाँदी के आभूषणों प मीनाकारी करने की कला सिखाई जाती थी। आज भी यह कला जीवित है।[5] जयरामदास नयगांधी ने कहा है कि "सोनें चाँदी पर मीनाकारी के लिए कच्छ जगमशहूर था।

---

1. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, भूमिका से उद्धत, पृ.- vi-vii,
   चिहुँ ओर चितेरे करत चित्र । बांटिकै रंग सूछिम विचित्र ।
   देहे महिल्ल परदाज फेरि । हिय थकित करत जन हेरि हेरि ॥ द्वितीय तरंग-52
2. अक्षय रस - संपा. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, झूलणा- 45
3. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर - 26/26
4. वही- 26/26
5. लखपति जस सिंधु-संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, भूमिका से उद्धत, पृ.- vii,

कच्छी कारीगर बहुत ही बारीक और आकर्षक नकशीकाम करते थे। आज उद्योग मृतःप्राय अवस्था में है। किन्तु उसकी माँग आज भी युरोप, अमेरिका में है।[1] 'लखपति जससिन्धु' में भी इसका दृष्टान्त आया है -

बुनिवौ सरस बनात कौं, बहुरि बनीती रंग ।

काच करन रेसम कठा, गनितदिकित्सा अंग ॥[2]

आधुनिक युग में औद्योगिकरण और टेकनोलोजी के विकास के कारण हस्तकला कौशल उद्योग को धक्का जरुर लगा है, किन्तु आज भी इसका अपना एक विशेष महत्व है और कुछ खास लोगों में आज भी इसकी माँग बनी रही है। कच्छ के शासक दुरंदेशी रहे है। लखपतिसिंहजी ने अपने राज्य की आय में वृद्धि लाने, राज्य को वैभवशाली व जनता को सुख सम्पन्न बनाने के लिए अनेक आर्थिक प्रयत्न किए। उनको ज्ञात था कि हस्तकला-कौशल पर ख्याति तो मिल सकती है, किन्तु राज्य की आर्थिक प्रगति इससे संभव नहीं। अतः उन्होंने अपने कुशल तथा होनहार इंजीनियर रामसिंह मालम को नई टेकनोलॉजी सीखने तथा उसमें दक्षता प्राप्त करने के लिए बारह वर्ष के लिए योरोप भेजा था -

चक्रवर्ति लखपति चतुर, अतुल जासु उपगार ।

मालिम कौ कीनो हुकम, भलपन गुन भंडार ॥

अंगरेज की अवनि में, मालि इहिं मृदु वेस ।

रहि कैं द्वादस बरषलौं, सीषऊ हुँनर अशेष ॥

प्रभु लखपति करिके कृपा, पठयौ पहुच्यौं जाइ ।

विद्या प्रापति पति अकम, सुख कर भये सुभाई ॥[3]

वस्तुतः इस परम्परा का प्रारंभ लखपतिसिंहजी के पिता देशलजी के समय से ही हो गया था। उन्होंने देवकरण जैसे कुशल अर्थशास्त्री को दिवान नियुक्त किया था, जिसने उद्योग-व्यापार के विकास के लिए प्रयत्न किए। प्रथम भूमि-कर की उचित व्यवस्था की, किसानों को आर्थिक सहायता देकर उत्पादन को बढ़ावा दिया, जिससे राज्य की वार्षिक आय 18 लाख कोरी हो गई।

---

1. मुघलकालीन गुजरात - लेखक - डॉ. नवीनचंद्र आचार्य, पृ. 172
2. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग - 85
3. वही - द्वितीय तरंग -81,82,83

साथ ही देवकरण ने अपनी निजी आय 10 लाख कोरी बढ़ा ली।[1] देशलजी के बाद लखपतिसिंहजी के शासनकाल में उद्योग-धन्धे के विकास के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न किए गये। रामसिंह मालम योरोप में विशेष रुप से हालैण्ड में रहे। वहाँ घड़ियाँ[2] बनाने,काँच का सामान तैयार करने, चिकित्सा विज्ञान[3] आदि सीख कर अपने देश में आये। यहाँ अनेक कारखाने, कार्यशालाएँ और हस्तकला सिखाने के स्कूल उनके निर्देशन में खोले गए। साथ ही गणित और चिकित्सा जैसे विषयों की शिक्षा देने की व्यवस्था भी करवाई। इसके अतिरिक्त तोपें और बन्दूक बनाने, लोहा तथा काँच से सामान बनाने के उद्योग स्थापित हुए। साथ ही साथ सोने चाँदी के गहने ढालने तथा उन पर नक्काशी व मीनाकारी करने के उद्योग भी स्थापित किये गए। रामसिंह ने रेशम के कारखाने, इत्र निकालने तथा अन्य विविध प्रकार के तेल के कारखाने स्थापित करवाये एवं दूरबीन का भी अपने राज्य में निर्माण करवाया -

जो इस वैदिक जिनस की, बिविध बासना बोध ।

लषि रस करिबौ लोर कौ, तोपनि कौं तिमि सोध ॥

XXXXXX

अरक अतर अति चीज कौं, तथा करन विधि तेल ।

बानिक रम्य बिलोर कौं, दूरबीन दिग षेल ॥

XXXXXX

नग परखन परखन मनुज, ओषध सिद्धि अषेद ॥ [4]

दूरबीन विषयज्ञ दृष्टान्त प्रवीणसागर में भी प्राप्त होते हैं। दूर की वस्तु को नजदीक देखने के लिए दूरबीन का उपयोग होता था। आखों में दूरबीन लगा हुआ है, जिससे अपने पास का शरीर नहीं दिखाई पड़ता, परन्तु दूरस्थ मित्र को देख सकते हैं -

---

1. बोम्बे गज़ेटियर, (भाग-5) पृ.- 139-40
2. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग - 89
   गनि खगोल भूगोल सौं, यौं घरयाल की उक्ति ॥
3. वही - द्वितीय तरंग - 85,86
   कांच कड़ा रेसम करन । गनिति चिकित्सा अंग ॥
   बानिक रम्य बिलोर कौं, दूरबीन दिग षेल ॥
4. वही - द्वितीय तरंग - 84,86,88

लागी सुरत सनेह, मानहु ज्यों दूरबीन द्रग ।

दरसत निकट न देह, दूर बसत मिता लखे ॥ [1]

लखपतिसिंहजी के शासनकाल में विकसित इन विविध प्रकार के उद्योगों का उल्लेख इतिहास ग्रंथों में भी मिलता है। रामसिंह की कला एवं कारीगरी के उत्कृष्ट नमूने आज भी मौजूद हैं, जिसकी कीमत आज बहुत ऊँची लगाई जाती है। उसने मीनाकारी के लिए जिस हस्तकला शाला की स्थापना की थी, उसका नाम रामसिंह की मृत्यु के उपरान्त भी लगभग 150 साल तक पूरे हिन्दुस्तान भर में प्रख्यात रहा। इसके अतिरिक्त रामसिंह द्वारा स्थापित विविध कारखाने, उद्योग संबंधी विस्तृत जानकारी भी प्राप्त हो जाती है।[2] अर्थात् 18वीं शताब्दी तक आते-आते गुजरात में अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे स्थापित हो चुके थे, किन्तु गुजरात में विदेशी जातियों का प्रभुत्व बढ़ रहा था। सूरत और अहमदाबाद में अंग्रेजों और डचों की कम्पनियों ने कारखाने खोल रखे थे। खंभात और भरुच भी औद्योगिक दृष्टि से प्रसिद्ध थे। यहाँ अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता था। इनमें मूल कृषि उत्पादनों से लेकर बढ़िया सूती और रेशमी वस्त्र, लोहे और इस्पात, पीतल, ताँबे, सोने तथा चाँदी की बनी वस्तुओं, इत्र, जहाजों तक का समावेश था। सूती वस्त्र उद्योग के महत्वपूर्ण स्थानों में अहमदाबाद, बडौदा, सूरत थे। 'अबुझफर नदवी' ने कहा हैकि सूती, रेशमी एवं ऊनी कपड़ों के उत्पादन में भी गुजरात हिन्दुस्तान भर में अग्रणी था। 'तास-गुजराती', 'कोतवार-गुजराती', 'बहादुरसाशाही रेशम' और 'मुहमदी रेशम' आदि उन दिनों के प्रख्यात वस्त्र थे।[3] अखा की रचनाओं में भी हीर या हीरागला, दमास आदि मूल्यवान वस्त्रों के उल्लेख मिलते हैं -

ज्युँ कपड़ा तें सूत ज्युँ का त्युँ । [4]

लखपतिजससिंधु में भी किनखाब, गुलबदन, पटुवा आदि रेसम के विविध रंगी वस्त्रों के उल्लेख मिलते हैं -

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 58/20
2. कारा डुंगर कच्छजा- अनुवाद : वसंतराय पट्टणी, विशेष दृष्टव्य के लिए पृ.- 136-37
3. गुजरातनो इतिहास (भाग-2) अनुवाद - छोटुभाई नायक, पृ. - 103
4. अक्षय रस- संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाशसिंह, भजन- 2

कीनषाब अवल षासें अटांन । दरियाड चीनियें दिव्य थांन ।

झूलानि झरी अतलस अनूप । सेलानि नारि कुंजर सरुप ॥

x x x x x x

रेसम मिलाय करि पंचरंग, पटुवा परोत आभरन अंग ।

झूलति अति जगमगैं हारझूंब, फबि रही फूलिकें उलटि लूंब ॥[1]

इत्र का उद्योग भी विकासमान था। इत्र की बनावट के लिए नवसारी प्रसिद्ध था।[2]

प्रवीणसागर में इत्र विषयक उल्लेख प्राप्त होते हैं -

समज सर- हिया जब दियो, अंतर को पट खोल ।

अहो प्रवीण तब तोल कर, कह सीसन को मोल ॥[3]

लखपतिजससिंधु से भी विविध प्रकार के सुगंधित तेल, अत्तर के व्यापार की पुष्टि होती है -

ताजे फुलेल चंपेल तेल, महकती बास सौं मोगरेल ॥

x x x x x x

अरगजा अतर सोंघा अमीर,

x x x x x x

अरक अतर अति चीज कौं, तथा करन विधि तेल ॥[4]

इन सब उद्योगों के साथ-साथ जहाज निर्माण कला का विकास भी हुआ था। उन दिनों जहाज निर्माण के जो महत्वपूर्ण केन्द्र थे, उनमें सूरत और खंभात मुख्य थे। अखा की रचनाओं में जहाज, नाव, खेवा आदि के उल्लेखों से सिद्ध होता है कि गुजरात में इनके निर्माण की व्यवस्था थी-

ज्युं नीर विषे नौका रहे, तो बहे कोटि मण भार ।

x x x x x x

नौका ते खेवा बडा आठुं दिशा बहात ॥

x x x x x x

सिन्धु में चलत नाव, जात कोइ बंदरुँ ।[5]

---

1. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 25,49
2. मुघलकालीन गुजरात - लेखक - डॉ. नवीनचंद्र आचार्य, पृ. 176 से उद्धत
3. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर - 66/11
4. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 50,51,86
5. अक्षय रस-संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाश सिंह, अथ सहेज अंग-14,अथ उदय कैवल्य अंग-14, भजन -3,

जहाज निर्माण कला में भारत यूरोपीय प्रजा से बहुत आगे था, 'पार्किन्सन' का कहना है कि "जहाज निर्माण में कदाचित् उन्होंने अंग्रेजों से जो कुछ सीखा, उससे बहुत अधिक उन्हें सिखाया।"[1] एतद्विषयक उल्लेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि राव लखपतिसिंह के पुत्र गोड ने एक ऐसा जहाज तैयार करवाया था, जो इंगलैण्ड की यात्रा करके सफलतापूर्वक लौटा था।[2] 'लखपतिजससिंधु' में जहाजी सफर के उदाहरण प्राप्त होते हैं -

धारन धारनी की हवा, बंदरि बहुत पहार ।
जंजीरानी (की) जुगति सौं, बेट बिलायत चार ।। [3]

जहाजी सफरों के वैज्ञानिक आधार पर स्थापित दृष्टान्त भी मिलते हैं। अखा की रचनाओं में सिन्ध सागर में कोई अज्ञात बंदर पर जाते जहाज को वायु के द्वारा उसको दिशा प्राप्त होने का वर्णन मिलता है-

सिन्धु में चलत नाव, जात कोई बंदरुँ ।
सकल वायु को जोर। ऐसे मैं हि संचरुँ ।। [4]

डॉ. के.एम. शाह ने कहा है कि "समुद्र यहाँ के लोगों के लिए बाह्य संपर्क का राजमार्ग है। यहाँ के नाविकों ने लम्बी, साहसपूर्ण परंतु सुनियोजित सफल समुद्री यात्राओं से विदेशियों का ध्यान खींचा है।[5]

अन्य उद्योग विषयक उल्लेखों में बीड़ी-धुम्रपान तथा आतशबाजी के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं, जिससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समय में इन वस्तुओं के बनाने के उद्योग प्रचलित रहे होंगे -

पावस बेसेके जल बसे करे ते धुम्रपान ।
ताण्ये तृष्णा ना करे माहे राखे ब्रह्मान ।।

X X X X X X

ज्यँ आतशबाजी का घोडला मीने, मरद खेले सो नाहिं जले ।
भड़-भड़ सो झगा ज्योत दीपी। जल जल कर फना होय गई।

X X X X X X

जो आतश का वरसे मेहा, तो भी त्याहाँ न दाझे देहा । [6]

---

1. भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास- डॉ. ताराचन्द्र, भाग-1, पृ. 168
2. बोम्बे गज़ेटियर, (भाग-5), पृ. 49
3. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 87
4. अक्षय रस- संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाश सिंह, भजन -3
5. महाराव लखपतिसिंह, व्यक्तित्व और साहित्यिक कृतित्व, पृ. 9
6. अक्षय रस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाश सिंह, आसा को अंग-11, झूलना -21, जकड़ी-23

इन उद्योगों पर कर प्रथा भी लादी गई थी। महाराव लखपतिजी ने अपने राज्य में आय का एक अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए ट्रेड प्रथा प्रारंभ की थी, कालान्तर में यह एक मान्य नियम के रुप में स्वीकृत हो गई।[1] एक तरफ इस प्रकार राज्य की आमदनी में वृद्धि करने के प्रयास किये जाते थे, तो दूसरी तरफ राज्य की आय की व्यवस्था के लिए सही उपाय भी किये जाते थे। राव भारमलजी ने जहाँगीर से ऐसा समझौता किया था कि कच्छ से किसी भी प्रकार का कर नहीं लिया जायेगा, जिसके बदले में कच्छ के शासक मक्का जानेवाले यात्रियों से भरे जहाजों को अपने माण्डवी बंदरगाह से निःशुल्क जाने देंगे।[2] इसके अतिरिक्त जहाँगीर ने मोरबी परगने को वापिस देते हुए 'कोरी' सिक्के ढालने की अनुमति भी प्रदान की थी,[3] जिसका उल्लेख 'लखपतिजससिंधु' में मिलता है -

ता दिन तै, कोरीनि को दिव्य भयो दरवारु ।
प्रथम मोरवी परगनों अरु अनई अवनीस ।
ए वातनि दोउ अचल दई रीझि दिल्लीस ।।[4]

इस प्रकार के वित्तीय समझौते के उपरान्त उद्योग और व्यापार के विकास के लिए तथा राज्य की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिए भी तत्कालीन शासक सतत् प्रयासशील रहते थे। सन 1702 और 1703 में दिल्ली दरबार से गुजरात के सूबेदार को एक संदेशा मिला था, जिसमें गुजरात की आर्थिक सम्पन्नता, वैभव का वर्णन है। शाहजहाँनाबाद में उद्योग-धन्धे बन्द हो जाने से शाहजादा मोहम्मद आजम को आदेश दिया गया था कि अपने प्रदेश (गुजरात) में इन वस्तुओं के उत्पादन के लिए समुचित कदम उठाये।[5] कच्छ के महाराव लखपतिसिंह ने उद्योग-व्यापार के विकास हेतु व्यापारियों से लिए जाने वाले कर की मात्रा कम कर उसे प्रोत्साहन दिया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने जनसाधारण के लिए एक घोषणा ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवा कर भुज नगर के मध्य मार्ग पर लगवा दी थी।[6] अतः मध्यकालीन गुजरात में आर्थिक सम्पन्ता हेतु बहुत प्रयत्न किये गये थे। कुल मिलाकर गुजरात की स्थिति अन्य प्रदेशों की तुलना में बहुत अच्छी थी।

1. बोम्बे गज़ेटियर, (भाग-5), पृ. 1491
2. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, भूमिका से उद्धृत, पृ. xvi
3. गुजरात का इतिहास- (भाग-2) - एम.एस. कमसरियट, पृ.76
4. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, प्रथम तरंग - 87,88
5. गुजरात का इतिहास- (भाग-2) - एम.एस. कमसरियट, पृ.208
6. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, भूमिका से उद्धृत, पृ. xxiii

गुजरात भौतिक साधन-सम्पन्नता से भरा पुरा राज्य था।

(आ) व्यावसायिक वर्ग, जातियाँ :-

मध्ययुग में जातिगत व्यवसाय व्यवस्था प्रचलित थी, जिसके उल्लेख एतद्विषयक रचनाओं में प्राप्त होते हैं। लखपतिजससिंधु में कवि ने ऐसी ही अनेक कौमों (जाति) का वर्णन किया है, जो जातिगत व्यवसाय को अपनाये हुए थीं। वे सब जाति के लोग सुख व शान्ति से शहर में रहकर नीतिगत व्यापार करते हैं, कवि ने इन व्यवसायिक जातियों का इस प्रकार वर्णन किया है -

हुन् बिकति निति व्यापार, जिनिसें और कौम अनन्त ।
रहत सुख सौं सहर में रुचि, कियो गौड़ सुकन्त ॥
हुन् कियौ गौण सुकंत अपनौ, रुचिर बहु रजपूत।
बामन रु बनिये लुहाने, लरीव भाटिये मजबूत ॥
हुन् भाटिये मजबूत भोई भाट चारण भाय ।
झोशन श्ररु खोजा मोचियें जत ओड़ भाड़ उपाय ॥
हुन् ओड भाडउपाय घांची मारवाड़ रु न्यास।
लोहार, कंसारे सुतारे, बहु सुबार सुबास ॥
हुन् बहु सुबार सुवास तुरिपोण माली रु सुनार ॥
गोबार और चमार सीदी धोबिये पौंवार ॥
हुन् धोबियैं पोवार कायथ औं पिंजार अपार ।
बाबर हजार कुंभार बुंहरे, भठारे ठंठार ॥
हुन् भठारे ठंठार वालिंद, कूंजड़े किन्नार ।
कोली तंबोली ओप टोली, सुथार दरजीसार ।
हुन सुथार दरजी सार बन्दर मानि मंगनिहार।
लंघे रु पातरि डूम लखियै मेय कूच बंधार ॥
हुन् मेय कूच बंधार पातरि, बागवान बताय ।
रंगरेज गांछे और बाँके, चित्रकार दिखाय ॥ [1]

अधिकांश व्यवसाय वंशानुगत होते थे, अतः लोग इनमें आसानी से कुशलता प्राप्त कर सकते थे-

सूझ, समझ और नेह बिना
पियु सी बस्त व हाथ आवे,
देह पथर, और साँई सोना,
अलगा पड़े, जो ताप खावे,..... भव की भावठ तब जावे.... [2]

---

1. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, भूमिका से उद्धत, पृ. x-xi
2. अक्षय रस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाश सिंह , झूलणा-96

कितने लोग यह व्यवसाय वंशानुगत होने के कारण अपना लेते थे, जो सिर्फ जीविकोपार्जन के साधन मात्र होते थे, क्योंकि उसमें व्यक्तिगत कुशलता के साथ-साथ अधिक परिश्रम लगता था। कुछ व्यवसाय को हिन्दु-मुसलमान दोनों जाति (धर्म) के लोगों ने अपनाये रखा था। जैसे कोली, जुलाहा आदि -

कोली साल न छाड़ै रे, सब धावर काढै रे ॥
X X X X X X
नांव नली भरि वुनकर लागा, अंतरगति रंगि राता ।
ताणै वाणैं जीव जुलाहा, परम तत सौं माता ॥
X X X X X X
ऐसैं तणि बुणि गहर गजीनां, साँई के मनि भावै ।
दादू कोली करता कै संगि, बहुरि न भौजलि आवै ॥ [1]

इसके अतिरिक्त लखपतिजससिंधु के रचनाकार ने तत्कालीन समय की बाजार व्यवस्था के वर्णन के साथ-साथ विविध व्यवसायिक वर्गों की व्यवसायिक विशेषता का वर्णन किया है। कवि लिखते हैं कि मानिक चौक के पास बाजार लगा है और वहाँ खरीदारी करने के लिए धनवान लोग फिर रहे हैं -

बरबने च्यार असिये बजार, बनि सूतबंध विस्तार सार ॥
मंडई पास मानिक (जु) चौका । लहि फिरत तहाँ धनवान लोक ॥ [2]

आगे कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है, इस बाजार में वस्त्रों के व्यवसाय करने वाले बजाज हैं-

बैठे दुकान सोहे बजाज। बहु मोल बसन मानिक समाज ॥ [3]

रुई में से सुन्दर बारीक धागा निकालने वाले तथा ऐसे बारीक धागों को सुन्दर रंग में रंगनेवाले रंगरेज हैं -

रंग अजब करत है रंगवाल, रंग परि रंग दै के रसाल । [4]

ऊंचे-ऊंचे महलों के रचनाकार संगतराशों का वर्णन भी किया गया है, जिनकी छेनी बराबर चलती रहती है, और बढई जो लकड़ी से बननेवाली वस्तुओं का कार्य करते हैं -

---

1. दादू दयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, राग सोरठि- 1
2. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 22
3. वही-द्वितीय तरंग - 23
4. वही-द्वितीय तरंग - 56

बढ़ई विशेष वहु, संगतराश अध्ययन, राजवल्लभ अभ्यास
प्रासाद सौध हर्म्यनि प्रलंब, विस्तारदार करत न विलंब ॥[1]

प्रवीणसागर में भी एतद्विषयक वर्णन प्राप्त होते हैं, राजकुमार सागर को शिवजी का मन्दिर बनाने की इच्छा होने पर वे कुशल शिल्पी और बढ़ई को हुकम देते हैं, और इस मन्दिर से खोदी हुई गुप्त सुरंग को महल से जोड़ने के साथ एक भव्य बाग बनाने का वर्णन ग्रंथकार ने किया है -

शिल्पि सुतार उतें बुलवाये, हुकुम एक महाराज कीयो ।
इतें एक शिवथान बनाओ, गुपत एक इत गुफा चलाओ ।
निकट तहां इक बाग बनावें, उतसे गुफा इतै चलि आवै ॥
तापर महल बाग महि कीजै, पुनि ईनाम आपको लीजै ।[2]

मन्दिर और महल को जोड़ती इस प्रकार की सुरंग तत्कालीन समय की स्थापत्य कला का ही उत्तम उदाहरण है और इस प्रकार की भव्य कला कारीगरी से यह शिल्पी जन राजाओं की तरफ से मुँहमॉगा इनाम भी पाते थे।[3]

अन्य वर्णनों में अस्त्रशस्त्रों पर शान चढ़ानेवाले शिकलीगर[4], शीशे का कार्य करनेवाले शीशकार[5], अच्छी सिलाई करनेवाले दरजी[6] साथ ही में कुंभार भी जो चाक चलाकर मिट्टी के सुन्दर बर्तन बनाते हैं।[7] लुहार, जो कटार, खंजर, तलवार आदि बनाते हैं।[8] दादू ने तप्त लोहे के माध्यम से लोहे का काम करनेवाली जाति लोहार का भी उल्लेख किया है, वे मानते हैं कि तप्त लोहा भले ही छोटा क्यूँ न हो, उसे पकड़ा नहीं जा सकता।

---

1. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 57
2. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 35/4
3. वही, लहर- 35/4
4. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, - द्वितीय तरंग- 62
   सिकलीगर सांधत अंग अंग । शस्त्रनि सुधारि पुरसांन संग ॥
5. वही - द्वितीय तरंग- 54
   सीसगर करत सीसासमूह, बिनु आरस कुंदीगरन व्यूह ॥
6. वही - द्वितीय तरंग- 55
   दरजी अनेक हैं राजद्वार, सीबत सवारि जिनमें सुठार ।
7. वही - द्वितीय तरंग- 60
   मृतपिंड दंड गहि चक्र गोल । कुंभादि करत भाजननि कोरि ।
8. वही - द्वितीय तरंग- 62
   धरतु धन लोह सारनि लुहार । तरवारि षंजर बगतर कटार ।

(दादू) ताता लोहा तिणै सूं क्यूँ करि पकड्या आइ।
गहण गति सुझे नहीं, गुरु नहीं बूझै आइ ॥[1]

वस्त्र बुननेवाले बुनकर[2] संत कवि निरांत ने भी कशीदाकार का वर्णन ज्ञानी गुरु के माध्यम से किया है-

ग्यानी गुरु ऐसा कसे, जैसा कशीदाकार।
उपदेश सुनाई दिये, टाले भ्रम विकार ॥[3]

सोने का व्यापार करनेवाले सुनार का भी वर्णन प्राप्त होता है।[4] बर्तन बेचनेवाले कंसारे[5], शराब बनाने का धंधा करनेवाले कलवार[6], वस्तुओं को परखने वाले पारखी[7], रत्नों के जानकार जौहरी[8], तेल निकालनेवाले तेली[9], जीन बनानेवाले जीनगर[10], चूड़ी बनानेवाले मनिहारिनें[11], पान बेचनेवाले तंबोली[12] इन सबका उल्लेख लखपतिजससिंधु में प्राप्त होता है । साहसिक व्यापारी गांधी जिसको पंसारी भी कहा गया है-

अखा गांधी जीव है सब हाके हाट।
सो बैद बीना मरे रोगीया ताहे सदा गुरु देखावे वार ।[13]

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, गुरुदेवजी को अंग-101
2. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग-64
   बनतु है मौडि बेजा विधान। पट बुनिया वस्त्र सपोतमान।
3. गुजरात के संतो की हिन्दी वाणी - संपा. डॉ. अम्बाशंकर नागर, निरांत-साखी-40
4. लखपतिजससिंधु, संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग-66
   जह भाग पुरिस भोक्ता उदार। तह घाट धरत गहनों सुनार।
5. वही - द्वितीय तरंग-67
   ठनकत ठंठेरानि के ठॉऊ। कौ लौं कंसारा गन गिनाऊँ ॥
6. वही - द्वितीय तरंग-70
   मृदु सुरभि मसालानिहि मिलाइ। काढत कलाल भट्टी चढाइ।
7. वही - द्वितीय तरंग-27
   परषतहिं द्रव्य पारषू प्रवीन। लागत न वार उहिं रंगलीन ॥
8. वही - द्वितीय तरंग-28
   जरदार जौहरी हैं जितेक। कोरि धन माझि राजै कितेक ॥
9. वही - द्वितीय तरंग-67
   तेल तिलादि मथि करत तेल। भरतु बऊ मूनि मटकी निखेल ॥
10. वही - द्वितीय तरंग-65
    जीनगर वाट मिलि करत जीन, बिधि बिधि बनात लै लै प्रवीन ।
11. वही - द्वितीय तरंग-59
    मनिहारनि तमनिनि मोट, जांने न जात जिन कीज ओट ॥
12. वही - द्वितीय तरंग-51
    तंबोली बेचत है तंबोल। अरुन करि उधर अरु नैन लोल ॥
13. अक्षयरस- संपा. डॉ. कुँअर चन्द्र प्रकाश सिंह, उपदेश अंग - 29

अखा ने पंसारी शब्द का प्रयोग गांधी के लिए किया है। 'जखपतिजससिंधु' में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है।[1] विविध प्रकार के मिष्टान्न बनानेवाले हलवाई[2] का वर्णन भी किया गया है। इन सब के अतिरिक्त सेवा कार्य में संलग्न धोबी[3], कहार[4], बागों की देखभाल करनेवाले माली[5] और क्षौर कर्म करनेवाले नाई[6] आदि जातियों का उल्लेख भी अवश्य प्राप्त होता है। इन व्यावसायिक जातियों के अन्तर्गत भाट चारण जाति का समावेश भी आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि विवेच्यकालीन कवियों की रचनाओं में किए गये वर्णन से यही ज्ञात होता है कि उनका मुख्य कार्य (व्यवसाय) कविता रचना और अवसर विशेष पर राजसभा में 'डायरो' में राजा की आज्ञा से कविता सुनाना आदि रहता था-

सांझ भई सदसी रची, हेरत विपिन बिहार ।
सागर है कविसे कहयो, बरनो कवित विचार ॥[7]

यह कवि अपनी बात के पक्के होते थे, राजा उन पर बड़ा विश्वास करते थे, और गोपनीय बातें, कार्य भी बताते-सौंपते थे-

तासु-बुलाय इकत, चिंत आयस उच्चारी ।[8]

समाज में भाट-चारण जाति का राजपूत जाति से भी अधिक सम्मान था। यहाँ तक कि राजाओं को भी इस जाति के व्यक्ति आशीर्वचन दिया करते थे-

सागर पे सुकवी गये, आशिष कीन उचार ।
सनमुख बैठे मुदित मन, मुसकर बार हि बार ॥[9]

---

1. लखपतिजससिंधु-संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग-51
   अरगजा अतर सोंघा अमीर, गांधी बजार बहु होत भीर ॥
2. वही - द्वितीय तरंग-48
   पैयै मिठाइयें पूरपाक । हलवाई बेचत होंसनाक ॥
3. वही - द्वितीय तरंग-68
   धोबी समूह धोबत दुकुल । पुनि हंस पांष से करत फूल ।
4. वही - द्वितीय तरंग-69
   कुँअरेल तरुन तैसे कहार । पालषी चलत लै परम चार ।
5. वही - द्वितीय तरंग-71
   वह सुभग बागवारी निवास..... भरि फूल फलनि माली सभाग ॥
6. वही - द्वितीय तरंग-61
   क्षौरादि चाकरी षरै चित्त । नाई न्हवाई करि लेत वित्त ॥
7. प्रवीण सागर-संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर-10/8
8. वही-लहर-21/18
9. वही-लहर-52/15

'अलैकजैण्डर फिनलॉक फार्ब्स रचित रासमाला' में इनके सम्बन्ध में कहा गया है कि "ये भाट और चारण कवि, बखान करनेवाले, उद्घोषकर्ता अथवा राजपूत कुलों की वंशावलियाँ लिखनेवाले होते हैं। भाट मूलतः ब्राह्मण होते हैं, वे ब्राह्मण संस्कारों का पालन भी करते हैं, जैसे जनेऊ पहनना आदि। यद्यपि देशकाल के भेद से प्रक्रिया में भेद हो सकता है। यह भी स्मरणीय है कि वैदिक राजाओं की सभा में भी ब्राह्मण पवित्र ऋचाओं का गान करते थे। एक पुरानी कहावत है :-

आगे चारण पीछे भाट,
ताके पीछे औरे जात।[1]

इन उपर्युक्त वर्णनों में से जातिगत व्यवसाय प्रथा के अन्तर्गत आनेवाले स्वर्णकार और अन्य मूल्यवान वस्तुओं के बनानेवाले तथा सर्राफ प्रमुख व्यवसायकार थे। मध्यकालीन प्रसिद्ध संत कवि अखा सुनार थे। आचार्य कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह ने लिखा है कि "अखा की रचनाओं में कुछ ऐसे पद मिलते हैं, जिन्हें निश्चित रुप से उनकी जाति का सूचक माना जाता है-अखाजी की जकड़ी में आये हुए शब्द 'सोनारा' से जनश्रुति द्वारा स्वीकृत उनके सोनार होने की पुष्टि होती है।

मिले सोनारा शाह अंतर से। (अखाजी की जकड़ी-30)
तो कहत अखा सोनारे (अखाजी की जकड़ी-32)

इन पंक्तियों से भी बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि अखा सोनार थे। यही नहीं, उनके अन्य अनेक पदों में भी सोनार शब्द आया है।[2] इन स्वर्णकारों का मुख्य कार्य आभूषण बनाना था। प्रवीणसागर में एतद्विषयक कई वर्णन रुपक के माध्यम से आये हैं। एक पद में इस प्रकार का वर्णन है - कामदेवरुपी सुनारने तनरुपी दुकान रची है, जिसमें से धीरज का धुँआ श्वास के रास्ते से बाहर आता है। ज्यों-ज्यों विरहरुपी ताप लगता है, स्नेहरुपी सोने की क्रान्ति उजली दिखाई पडती है। फिर आँखोंरुपी कसौटी पर कसने से सही मालूम पड़ता है। अर्थात् यहाँ ग्रंथकार ने स्वर्णकार द्वारा मणियों से जड़ित हार बनाने का वर्णन किया है-

---

1. सांस्कृतिक गुजरात, अनुवाद - गोपालनारायण बहुरा, विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य पृ.-37
2. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाश सिंह, प्रस्तावना, पृ. 15 से उद्धृत

मैन सुनार दुकान रच्यो तन, धीरज सास धुआं उमटे ।
ज्यों ज्यों लगे विरहानल ज्वाल, त्यों कंचन नेह प्रभा प्रगटे ॥
शाम तुला रति लाल धरे मधि, नैन कसी सु बढ़े न घटे ।
प्यारे प्रवीण परच्छन हार, बनावत भेद मणी सु जटै ॥[1]

एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि स्वर्णकार सोने को जितना तपाता है, उतनी ही उसकी कींमत बढती है-

मन प्रवीण कुंदन महोर, प्रेम प्रकासे जोत ।
बिरह अग्नि ज्यों ज्यों तप, त्यों त्यों किम्मत होय ॥

XXXXXX

मन प्रेमी कुंदन महोर, सुरत प्रकाश जोत ।
विरह अनल ज्यों ज्यों तपे, त्यों त्यों कीमति होत ॥[2]

एक दृष्टान्त में ग्रंथकार लाज को सोने के समान कींमती बताते हुए उसे तजकर (जैसे सोने को तोड़कर हार बनाया जाता है) मिलाप रुपी हार बनाने का वर्णन करते हैं -

लाज सराहत हे सबे, एकहि बार निबार ।
सोनेको परिहरि रच्यो, सोने को उर हार ।[3]

आज भी पुराने स्वर्ण को तुड़वाकर फिरसे उसी में से कुछ नये घाट का आभूषण बनाने का प्रचलन दिखता है। अखा ने इन लोगों के द्वारा सोने में की जानेवाली मिलावट (अन्य धातु) के प्रति सचेत करते हुए धंधे में ईमानदारी का व्यवहार करने की बात कही है-

दीया मलामां रांगका कंचन कीया खराब ॥
खाक कार्य खोहोया अखा त्युं गमाया आप ॥

XXXXXX

तोल तफावत हो रहया। ढूँढया ठौर न पावै ।
नझरे न आवे निरखतां। कारीगर कोइ ।[4]

इन स्वर्णकारों के अतिरिक्त रत्नों के पारखी जौहरी भी तत्कालीन समय की प्रमुख व्यापारी जाति थी, जो जरुरत पडने पर राज्य को आर्थिक सहायता भी करते थे -

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर - 33/23
2. वही-लहर-36/16, 46/26
3. वही-लहर-58/2
4. अक्षयरस- संपा. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह, क्रम जड़ अंग-6, भजन-4

जरदार जौहरी हैं जितेक । कोरि धन माझि राजै कितेक ।। [1]

वस्तुतःउनका प्रमुख कार्य रत्नों को परखना होता था, इस कार्य में वे काफी निपुण माने जाते थे-

द्वै सौ दलाल लटपट लगाई। सौदा सलूक विवदै बनाइ ।
परषतहिं द्रव्य पारषू प्रवीन । लागत न वार उहिं रंगलीन ।। [2]

प्रवीणसागर में मिलते दृष्टान्त से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उनका कार्य रत्नों को परखना था, एक राहगीर द्वारा जौहरी की दुकान पर जाकर आभूषण दिखाने पर जौहरी द्वारा उसके भिन्न-भिन्न मोल लगाने का वर्णन है -

नीकपना मनि नील,, मुकत मानिक विदुम मनि ।
पोखराज लसनीक, फटिक गोविंद विदुर्ज्जनि ।।
परे सबै इक ठौर, काहु पंथीने पाए ।
वह किम्मति के लिए, हाट जौहरी के आए ।।
सब मध्य तेज घट पेमवत, जौहरी करि पारिख लहै।
सिद्धा बदंत सागर सुनो, न्युनाधिक इहि विधि रहैं ।। [3]

यह संभव है कि इन जौहरियों को ही सर्राफ भी कहा जाता होगा। "मध्ययुग में सर्राफ का मुख्य कार्य सोने-चाँदी के सिक्कों को परखने का होता था। शासन व्यापार में सर्राफ द्वारा परखे सिक्कों को ही स्वीकार किया जाता था। इसके अतिरिक्त व्यापारी को ऋण पर रुपया देना तथा हूँडियाँ देना एवं उनका भुगतान करना भी सर्राफ का कार्य था।"[4] इसी ऋण लेने और देने संबंधी प्रथा से तत्कालीन समाज में व्याप्त शोषण पर प्रकाश पड़ता है। किसी भी प्रकार का अभाव मनुष्य को गुलाम बनाने के लिए मजबूर करता है, धन के अभाव में लोग कर्ज लेते थे, फिर उनका शोषण होता था। कवि दयाराम ने संकेत दिया है कि नाहर (सिंह) के नख लगने से जो घाव हो जाता है, वह तो उपचार से ठीक भी हो सकता है, लेकिन यदि एक बार कर्ज का घाव लग गया फिर उसका कोई उपचार नहीं - कवि ने कर्ज देनेवालों को सिंह की उपमा दी है और कर्ज को सिंह से भी ज्यादा अधिक खतरनाक बताया है, अर्थात् जो उनके चंगुल में फँसता है वह जीवनभर नहीं निकल पाता -

---

1. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 28
2. वही, द्वितीय तरंग-27
3. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर - 45/15
4. यूजरी इन मैडीवल इण्डिया, (विल्सन ग्लौसरी) - इरफान हबीब, पृ.469

वेसो करजि निहार दुख, जैसों करज नहारु ।
पे कुछ भल यह टरत दुत, यह न हार विस्तार ।।[1]

आगे कवि ने इस आर्थिक तथ्य की ओर भी दृष्टिपात किया है कि निर्धन दिन ब दिन अति गरीब और धनवान अधिक धनिक होते जा रहे हैं-

दुख में द्रुत, सुख सुखन में दिन दिन बढता हि जाय,
अपनी अपनी जात में, सबको जात सुहाय ।। [2]

यही धनवान लोग, समाज के ठेकेदार, निर्धन व गरीब प्रजा को अपने शोषण का शिकार बनाते थे। आर्थिक सम्पन्नता सामाजिक प्रतिष्ठा का एक महत्वपूर्ण कारण बन चूकी थी-

हाम न बाहावै हठ करी तो अखा मील्ये क्यूं राम ।
ललोपतो माहाराज सु आदर दुनीया दाम ।। [3]

वित्त का प्रभाव तत्कालीन लोगों के उपर छाया हुआ था। धन के अभाव से पीड़ित होने के डर से लोग प्रभु-भक्ति से विमुख होकर स्वार्थी, विलासी बन गये थे-

मुख प्यारो माहाराज कहे दलमां प्यारो राम ।
ज्यो कुलटा प्यारो जारहे ओर प्रगट पीउ को नाम ।।
XXXXXX
नाथ अधिक नहीं नारतें धन आगे धर्म नीच ।
मत आगे सत्य कहु जे पडे बीषे के कीच ।। [4]

निम्न जाति के वर्गों के लोगों को (श्रमिकों एवं कारीगरों को) अधिकारी वर्ग द्वारा बेगार के लिए पकड़ लिया जाता था-

साईयाँ पाई सुंदरी केसे जानी जाय।
सुख संसार भावे नहीं सबे बेगारी ताहे ।।[5]

इन सबका कारण धन था। धन के अभाव में लोगों की पेट-पूर्ति भी नहीं हो पाती थी। इस लिए जीविकोपार्जन के लिए लोग चोरी भी करते थे, तो कितने व्यवसायी लुटेरे होते थे। अखा ने चोरी को रोजगार बताते हुए चोरों के गाँव होने की बात की है-

चोर चंडाल कुमति नहीं सो तो हे रोजगार ।
कुमति का आचरण अखा! सो मन ही का व्यापार ।।
XXXXXX

1. दयाराम काव्य सुधा - संपा. प्राणशंकर व्यास, (रसिक रंजन), पृ. 207
2. वही-पृ. 216
3. अक्षय रस- संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह, हंस परीक्षा अंग- 11
4. वही- नंदीक अंग-2, लंपट अंग -7
5. वही-प्राप्ती अंग-4

देवी असुरी सृष्ट नहीं जात भात का काम ।
ज्युं सरोतर जंगल भल बुरा चोर का गाम ।। [1]

गुजरात के कोली एवं गरासिया जाति ऐसे ही व्यवसायी लुटेरे थे, जो लूट के लोभ से किसी भी राजद्रोही की सेना में शामिल हो जाते थे।[2] एक तरफ धन के मोह में राजद्रोह भी किया जाता था तो दूसरी तरफ धन के अभाव के कारण पेट-पूर्ति के लिए दास-दासियो के रुप में जीवन व्यतीत करना पड़ता था। जिनका क्रय-विक्रय भी होता था।[3] धन के इसी अभाव के कारण पेट-पूर्ति के लिए तत्कालीन समाज में भिक्षा जैसा सामाजिक दूषण भी फैला हुआ था। कितने ही लोग घर-घर जाकर भिक्षा माँगकर अपनी क्षुधा शांत करते थे-

ज्यम भिक्षुक भिक्षा करे एकठी, कहीं अलग बेठि खाय ।।[4]

इसी प्रकार की आर्थिक अनर्थता को दूर करने के लिए तत्कालीन शासकों की ओर से कुछ योजनाएँ भी चलाई जाती थीं। लखपतिसिंहजी के औद्योगिक सलाहकार रामसिंह ने ऐसी दीर्घकालीन योजनाएँ भी चलाई थीं, जिससे स्थानीय लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके। 'आयना महल' इसी योजना के अन्तर्गत निर्मित हुआ था, जिस पर अस्सी लाख कोरी का खर्चा आया था।[5] जिसके उदाहरण 'लखपतिजससिंधु' में भी प्राप्त होते हैं।

मुकुर के भोंन मांहि होति प्रति विर्वित यो
एक एक धनी भांति व्यापि रही यथागति ।
जिनमें प्रताप पुंज पुंज अलंकार जुत..... लखपति ।।[6]

---

1. अक्षय रस- संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह, अथ कुमति अंग- 18,21
2. गुजरातनो इतिहास (भाग-2), अनुवाद -छोटुभाई नायक, पृ.91
3. अक्षय रस- संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह, भजन-26, जकड़ी-33
4. वही-आसा को अंग-12
5. बोम्बे गज़ेटियर, (भाग-5) पृ.216
6. लखपति जस सिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - प्रथम तरंग -5

(इ) नगर संरचना और आवास :

नगर योजना का सीधा सम्बन्ध राज्य-सुरक्षा से है। नगर संरचना के अन्तर्गत कोट, किले या दुर्ग, गढ़ की द्रढ़ता इसके शासक की शक्ति की ही परिचायक थी, क्योंकि दुर्गों की समुचित व्यवस्था, सुरक्षा इस युग के राजनीतिक जीवन का प्रधान अंग थी। जिसके दृष्टान्त हमें मध्यकालीन रचनाओं में प्राप्त होते हैं। नगर को चारों तरफ से सुरक्षित करने के लिए मध्यकाल में नगर सुरक्षा का सबसे उत्तम ढंग नगर के चारों ओर एक विशाल खाई खोदना होता था।

लखपतिजससिंधु के अनुसार कच्छ के महारावों ने भुजनगर के चारों ओर ऐसी ही एक विशाल खाई का निर्माण करवाया था जो पानी से भरी होती थी-

असमान उच्च गढ़ तित उतंग। बनि मुरज उरज बर्तुल अभंग।
अति अंबु पूर परिषा अटक। मानहु पयोधि मधि लसति लंक ॥ [1]

इस खाई को पार करके नगर में आने-जाने के लिए दरवाजे वाले बारह घाट बने थे, जिनकी दीवारें बहु मजबूत थीं -

द्वादस दरबाजे शुभ सुघाट। कर्कस दिवाल जैसे कपाट ।
कीले कटोर कूंजरन लाग । अर्गल अडोल भारी अदाग ॥ [2]

यह इसलिए आवश्यक था कि कभी कोई शत्रु आकर नगर के सामाजिक जीवन को न छेड़ सके। इसका परिणाम था कि भुज नगरबासी स्वच्छन्दता से अपना जीवन निर्वाह करते थे। मध्यकालीन सन्त कवि दादू ने भी नगर सुरक्षा के लिए इस प्रकार की व्यवस्था को आवश्यक बताया है। उन्होंने दुर्गों की समुचित व्यवस्था के लिए खाई और भित्ति के निर्माण तथा उसके कारण अभय एवं निश्चिन्ता को व्यक्त किया है।[3]

इतिहास ग्रंथो में भी इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। अहमदाबाद शहर के वर्णन में उसके चारों ओर बड़ी मजबूत दीवालें [4] बनी होने की बात कही गई है। यहाँ एक संभावना दृष्टिगोचर होती है कि दादू मूल अहमदाबाद के थे और अपनी शुरु की जिन्दगी उन्होंने वहाँ व्यतीत की थी, जिससे उन्होंने अहमदाबाद शहर के आसपास बनी इन दिवार को देखा होगा, जिसका अप्रत्यक्ष उल्लेख उन्होंने अपनी रचना में किया है। प्रवीणसागर में भी नगर के आसपास पहाड़ के समान

---

1. लखपति जस सिंधु-संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 2
2. वही-द्वितीय तरंग-3
3. सन्त सुधा सार- संपा. वियोगी हरि, (स्वामी दादू दयाल) काल कौ अंग-8
4. हिस्ट्री ऑफ गुजरात (भाग-2)- एम.एस. कमसरियट, पृ. 52

ऊँचे नगर के कोट का वर्णन मिलता है, जिससे शत्रु भयभीत दिखते हैं-

ओपें प्रकार, गिरि सम उत्तंग,
भैभीत शत्रु, निज पुर अभंग ।[1]

इस प्रकार की व्यवस्था से यही ज्ञात होता है कि तब दूसरे राज्यों या राजाओं की तरफ से युद्ध का भय बना रहता होगा और इसीलिए दुर्गों की समुचित व्यवस्था जरुरी होती होगी।

आवास सम्बन्धी वर्णनों से यही पता चलता है कि मध्यकालीन कवियोंने उच्चवर्ग के लोगों के निवासस्थान संबंधी उल्लेख ही किये हैं। निम्नवग के लोगों के आवास संबंधी जानकारी कम ही प्राप्त होती है। अर्थात् सामंतकालीन जीवन संस्कृति की जानकारी ही विशेषकर प्राप्त होती है। अखा ने आलीशान महलों (मकानों) में रागरंग से युक्त वैभवपूर्ण विलासी जीवन व्यतीत करने का उल्लेख किया है -

सुझन बुझन गूझ गोविन्द की लुंझ परे लोका देखी अडंबर,
आछो सो अंग उर तान तरंग शोभा सुगंध रंग पाट पटंबर ।
तन सुख मन सुख लालच्य के लीये चीत्रवीचीत्र देखी भयो झुंमर,
रामबीना रीत्य मानी अखो केहे जैसे अंक भरे कोई अम्बर ॥[2]

अधिकांश रचनाओं में वैभवपूर्ण, विलासी जीवन का वर्णन प्रायः मिलता है। राजा के निवास स्थान को महल कहा जाता था जो आकार और विस्तार में विशाल हुआ करता था तथा उसके विविध विभाग हुआ करते थे, जिनमें सभा-स्थान, राज परिवार के पुरुषों का निवास, रनिवास आदि मुख्य थे। यह राजमहल प्रायः सतखंडे होते थे। उसके सात द्वार और सात ड्यौढ़ियों पर पाचसो सिपाहियों का पहरा होता था और राजमहल के चारों ओर पाँच हजार योद्धा रक्षा के लिए नियुक्त रहते थे। महल के अन्दर तीन चौक होने की बात भी कही गयी है, जहाँ राजकिंकरियाँ पुरुषवेष में हथियार लेकर खडी रहकर पहरा देती थीं-

दरबार द्वार देहरी सात, पंच पंच पावक रहात। परकार राज गिरदी प्रमाण,
थित सहस पंच प्रति थान यान ।
... बहें कौन पुरुष अभिधान बाल। ता अंत्र फेर देहुरी तीन,
पहिरात राज किंकरी कीन। उनहिं सु शस्त्र बंधे अखंड,[3]

---

1. प्रवीणसागर-संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 7/2
2. अक्षयरस- संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह, संतप्रिया-49
3. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 23/2

राजमहल में तीन चौक होने और उसमें स्त्रियों के पहरा देने सम्बन्धी विवरण से यही ज्ञात होता है कि यह चौक प्रायः स्त्रियों की बैठकों के लिए होते होंगे, जिससे वहाँ सिर्फ स्त्रियों द्वारा पहरा देने की बात सहज लगती है। महलों में जालीदार सुन्दर झरोखों का निर्माण किया जाता था, जिनमें सुन्दर चित्रों को उकेरा जाता था-

जारीन झरोषानि के जाल, रस चित्र रचेनाना रसाल ।[1]

महलों में दहलीज, गोखले बनाये जाते थे। जालियाँ भी लगी हुई होती थीं और अटारी भी बनाई जाती थी-

बीच दरीचन घाय, गोख झरोखन मे अटा ।
बदन न देख्यो जाय, हेर हेर हारे नयन ।।[2]

तत्कालीन समय में स्थापत्य के निर्माण में स्वर्ण का उपयोग वैभव का प्रतिक माना जाता होगा। 'लखपतिजससिंधु' में वास्तुकारों द्वारा महलों में सुन्दर सोने के खम्भे रचना, जिनमें चन्दन के लम्बे-लम्बे लट्ठे का वर्णन किया है।[3]

कच्छ के 'आयना महल' में दो काँच के बीच में सोने को जड़ा गया है।[4] महलों के आजू-बाजू बाग बनाये जाते थे, वहाँ से महल में आने के लिए मार्ग पर उत्तम जरी को बिछाया जाता था, उसी में पाँच द्वार के बाद दीवानखाना होने की बात भी कही गयी है-

बाग महल सुभ थान, तहाँ कीनी सु बिछायत ।।
नृप नीतिपाल सूधे चले, पंच उलंघित देहरी।
गज तजि दिवान कीन्हों तहां, चली वघाइ सु चेहरी ।।[5]

महल या नगर के चारों ओर बाग-बगीचे, जहाँ फल, फूल के वृक्ष लगाये जाते थे। साथ में अनेक तालाब, और पानी के कुओं को भी बनाया जाता था-

बनि सहर पास, चहुं ओर बाग, फल फूल झूल रहे मनहु फाग ।।
XXXXXX
कई ताल सरित, वापी, सुकूप, पनिहार घाट, घट जात रुप ।।
XXXXXX

---

1. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 32
2. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 30/36
3. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 33
4. कारा डुंगर कच्छजा- अनुवाद : वसंतराय पट्टणी, पृ.- 137
5. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 14/11

पुर निज बाग पुरान, फूल फल मालिनी लावै ॥ [1]

महल के साथ-साथ मंदिर भी बनाये जाते थे, उसे गुप्त मार्ग से जोड़ती सुरंग भी होती थी, और उसमें बनाया हुआ बाग वृक्षों और बेलों से घिरा रहता था।[2] प्रवीणसागर में महल के पास स्थित बाग में उमा-महेश के मंदिर का उल्लेख किया गया है -

महाराज निज बाग, उमा महेश सुहावे। [3]

महलों की सीमा में ही बगीचे, सरोवर और मंदिर आदि के वर्णन से यह मालूम पड़ता है कि राजपरिवार की महिलाओं के पूजन, स्नान और भ्रमण की सहूलियत को ध्यान में रखकर ही इसको बनाया जाता होगा।

महलों के साथ-साथ नगर में ऊँचे मकानों का होना भी बताया गया है। प्रवीणसागर में एक स्थान पर तीन मजला विशाल भवन का दृष्टान्त आया है-

सौध भोमि तीसरी, कीन चांदनी बिछायत ॥ [4]

तो 'लखपतिजससिंधु' में आसमान से ऊँचे लगते मकानों का वर्णन है, जिसका ऊपरी भाग गोलाकार बताया गया है-

असमान उच्च गढ़ तित उतंग ।
बनि मुरज उरज बर्तुल अभंग ॥ [5]

इसके अतिरिक्त 'प्रवीणसागर' में ब्राह्मण के विशाल, वैभवी निवास का वर्णन आया है, जिसमें अतिथियों के लिए अलग व्यवस्था होने का उल्लेख किया गया है-

ता पुर में दुज रहत हैं, चतुरानन अभिधान ।
गृह हय गय फंदन* अरथ, राजद्वार सनमान ॥ [6]

---

1. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 7/2, लहर- 69/6
2. वही-लहर-35/5
3. वही-लहर-27/9
4. वही-लहर-19/4
5. लखपतिजससिंधु-संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 2
6. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 7/11

* फंदन, बेल, बून्टे जो गलीचे और कसीदे आदि में बनाये या काढे जाते हैं। पहपसिंह, पृ.81

आसन दियो जमाय, द्वारांदर एकंत ग्रह ॥
श्यदन चढ़ि ग्रह गमन किय, संग कुजाक सु लीन ॥ [1]

'लखपतिजससिंधु' में विशाल भवन पर फहरते दंड का वर्णन है, जिसकी गति पक्षी की उड़ने की ओर है ,[2] यहाँ शिव और जैन पंथीओं की बात कही गयी है। जिससे यही संभावना बनती है कि यह मंदिर होगा और उस पर फहराता दंड ध्वज होगा।

अन्य निम्नवर्ग के लोगों के घरों पर छप्पर डाले जाते थे जो घास-फूस से बने होते थे-

बारीनि लषेरा राजाबास। यों छप्पर बंध आछे फुल्हास ।[3]

(ई) आवागमन के साधन :

आलोच्यकाल में बाष्प के माध्यम से चलनेवाले मोटर, रेल आदि आवागमन के साधनों का आविष्कार नहीं हो पाया था। अतः तदर्थ अश्व, बैलों द्वारा खींचे जानेवाले वाहनों का प्रयोग किया जाता था। गुजरात के मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में घोड़ों, बैलों, पालकी, टट्टू, बैलों और अश्वों के रथ और हाथी आदि का आवागमन के साधनों के रुप में वर्णन मिलता है।

देश के आवागमन के साधनों में घोडे, बैल एवं ऊँट का विशेष उपयोग होता था। बैलों की गाड़ियों का वर्णन अखा की रचना में मिलता है-

काढ्या गाड़ा जे ही था ज अड्या ।
XXXXXX
गाड़ा लोहार लगाईया, हार्‌या हांकणहार ॥ [4]

प्रवीणसागर में आये वर्णन के अनुसार राजा की सेना में कितने रथों में घोड़ों के साथ-साथ बैल जोतने का वर्णन भी आया है। वे रथ बडे सुशोभित होते थे। उनमें रेशम की डोर लगी है साथ ही में स्वर्णमंडित वस्त्र की छतरियाँ लगी हैं, बैलों, अश्वों को सुंदर वस्त्रों से सुसज्जित करके जोता गया है-

है अनंत फंदन बरुथनी, नीड डोर जिहि रेश्मी तनी।
जात रुप परचंड दंड है, नीक जह हाटक सुं इंड है।

---

1. प्रवीणसागर-संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 23/18, 24/2
2. लखपतिजससिंधु- संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग- 36
3. वही-द्वितीय तरंग-73
4. अक्षयरस-संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाशसिंह, झूलणा-35, वीटंड अंग-15

झल्लरीय जरतार छत्रियं, झीन झबे मानिक जरत्रियं।
नाभि बांक कुबजं सुरुपियं, बाब केक वृषभं सजोरियं ॥
तास झूल मखतूल झूलितं, भ्रन्त सूह चकठोल भूलितं ।[1]

इस प्रकार के वर्णनों से एक बात स्पष्ट होती है कि अश्वों के अभाव में बैलों को जोता जाता होगा। दूसरी ओर दादू ने यातायात के एक साधन की सवारी रुप में पालकी का वर्णन किया है-

प्रेम-लहरि की पालकी, आतम वैसैं आइ ।
दादू खेलै पीव सौं, यह सुख कह्या न जाइ ॥[2]

वस्तुतः पालकी बड़े घरों की स्त्रियों के लिए प्रयुक्त यातायात का साधन रहा होगा। उनके लिए सवारी मे सुन्दर रथ का प्रयोग भी होता था-

को दिन वाहन स्पंदन छाजे,
को दिन शिविका चारु विराजे । [3]

राजा अपने प्रवास में या युद्ध के समय असंख्य घोडे, हाथी, रथों के साथ-साथ सामान बेचनेवाले व्यापारियों की दुकानें भी साथ रखते थे-

गज संग साठ पचास, मनु घटा भादों मास ।
---- ---- ----
उमराव आप जनान, रथ एक शत अनुमान । सहचरी दोय हजार ॥[4]

मध्यकाल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर व्यापार की वस्तुएँ लाने ले जाने के लिए थलमार्ग का प्रयोग होता था, जिसमें यातायात के साधन के स्वरुप ऊँट, घोडों, बैलों का ही प्रयोग होता था। मार्ग में लुटेरे तथा अन्य असुविधाओं के कारण अनेक कठिनाईयों का सामना करना पडता था। व्यापारियों के सम्मुख यातायात में आनेवाली असुविधाओं का वर्णन दादू ने विभिन्न रुपों में किया है-

भावमकि का भंग कर बट पारे मारहि बाट ॥[5]

---

1. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर- 12/7
2. संत-सुधा-सार- संपा. वियोगी हरि, (स्वामी दादू दयाल), परचा कौ अंग- 18
3. प्रवीणसागर-संपा. गणपतिशंकर शास्त्री; लहर- 74/17
4. वही-लहर- 35/13
5. दादू दयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, साध को अंग-106

दादू व्यापारी के लिए मार्ग में आती अनेक कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए बटमारों के फन्दे में पड़ लुट जाने का वर्णन भी करते हैं-

काम क्रोध भये वटवारे, तकि मारैं उरि चोट ।
वेरी पांच सबल संगि मेरो, मारग रोकि रहे ।। [1]

उन्होंने एक स्थान से दूसरे स्थान जानेवाले मार्ग में स्थित कारवी[2] (मुसाफिरखानों) तथा सराय आदि का उल्लेख भी किया है। सराय को देखते ही पथिक उसमें विश्राम को जाता है किन्तु दूसरे दिन उसको वैसे ही छोड़ आगे यात्रा पर चल देता है।

दादू काया कारवी, देषत ही चलि जाइ।
जब लग सास सरीर में, राम नांम ल्यौ लाइ।

XXXXXX

दादू काया कारवी, मोहि भरोसा नाहि ।
आसण कुंजर छत्र सिरि, विनसि जाइ छिन मांहि।

XXXXXX

दादू काया कारवी, पडत न लागे वार।
बोलणहारा महल में, सोभी चालणहार ।।

XXXXXX

दादू काया कारवी, कदे न चाले संग ।
कोटि बरस जे जीवणां, तऊ होइला भंग ।। [3]

अतः स्पष्ट है कि यातायात के मुख्य साधनों में ऊँट, घोड़े, बैलों का उपयोग किया जाता था। रथ, या पालकी का उपयोग साधारणतया सुविधा की दृष्टि से बड़े घर की स्त्रियों द्वारा किया जाता था।

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, राग रामगरी- 10
2. कारवीं शब्द कारवां से बना है - जो यात्रियों तथा व्यापारियों का एक समूह था, जो घोड़ों, ऊँटों, बैलादि पर बिक्री की सामग्री के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता था।
3. दादू दयाल ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी, काल को अंग-15,16,17,18

निष्कर्ष :

तत्कालीन समय में अर्थोपार्जन के मुख्य स्रोत कृषि, व्यापार, उद्योग-धन्धे और जातिगत व्यवसाय, तथा सूद पर धन देना आदि थे। विवेच्यकाल में अर्थोपार्जन का सबसे प्रमुख साधन कृषि-कार्य था। कृषि की दशा समुन्नत थी। साथ ही में व्यापार को भी पर्याप्त महत्व प्राप्त था। कृषि के बाद अर्थोपार्जन का प्रमुख साधन यही था। उद्योगों में से वस्त्रवयन, शस्त्रास्त्र का निर्माण, जहाज निर्माण, इत्र-व्यवसाय विशेष समुन्नत थे। स्वर्ण की कलाकारी और अन्य हस्तकलाओं का पर्याप्त महत्व था, जिनको शासन की ओर से भी पर्याप्त सहायता मिलती थी। नगर संरचना में सुरक्षा का सबसे ज्यादा ध्यान रखा जाता था। यातायात के साधनों में बैलगाड़ी, अश्व रथों की सवारी आदि प्रमुख थे।

अधिकांश लोगों का प्रमुख व्यवसाय खेती होने से इस पर अधिक ध्यान दिया जाता था। कृषि योग्य भूमि का अच्छा उपयोग कर खूब धान्य उगाया जाता था। अच्छी खेती, सफल खेती के लिए समय पर हो जानेवाली वर्षा को सबसे बड़ा आधार माना जाता था। वर्षा के अभाव में तत्कालीन समय में खेती के लिए सिंचाई व्यवस्था का भी सहारा लिया जाता था। समय पर वर्षा भी न होने से और सिंचाई के अभाव में प्रायः दुर्भिक्ष पड़ जाते थे, और इसकी भयानकता इतनी दर्दनाक होती थी कि लोग मानव-भक्षण तक उतर आते थे। वर्तमान युग में भी दुर्भिक्ष और कृषि के नष्ट हो जाने की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सन 2000 में गुजरात ने इसकी भयानकता को देखा है। हाँ, इतना जरुर है कि आज के समय में मध्यकाल जैसी मानव-भक्षण तक की स्थितियाँ दिखाई नहीं देती हैं। क्योंकि समय के अनुभव से शासन ने इन आपदाओं से निपटने के लिए कुछ कार्य-योजनाएँ विकसित करने का प्रयास किया है।

कृषि पैदावार में गेहूँ, चावल, कपास, केला, ईख आदि का प्रमुख रुप से उत्पादन होता था। गेहूँ से बनती अन्य चीजों के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। ईख के रस से गुड़, शक्कर के साथ-साथ शराब निकाले जाने सम्बन्धी विवरण भी प्राप्त होते हैं।

व्यापार की दृष्टि से उस समय भी गुजरात काफी आगे बढ़ा हुआ था। विदेशी व्यापार भी समुन्नत दशा में था, जिसमें लंका से स्वर्ण के आयात सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। बाजार विषयक वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में बाजारों में क्रेता और विक्रेताओं की

बड़ी भीड़-भाड रहती थी। बड़े व्यापारियों के हाथों में बाजार का डोरी संचार रहता था, छोटे व्यापारी उन पर पूरी तरह से आश्रित थे। दैनिक उपयोग की वस्तुओं से लेकर अति कीमती वस्तुओं का थोक व्यापार इन्हीं के हाथों में था। कर्ज सम्बन्धी उल्लेखों से यही ज्ञात होता है कि व्यापार करने के लिए कर्ज लेना आवश्यक होता होगा लेकिन मध्यकाल के अधिकांश कवियों ने कर्ज के लेनदेन सम्बन्धी व्यवहार में सावधानी बरतने की बात कही है। तत्कालीन समय में व्यापार में ठगाई, मिलावट आदि व्यापारिक अनीति के प्रचलन को देखकर ही मध्यकालीन कवियों ने व्यापारिक नीतिमत्ता, ईमानदारी की बात कही है।

उद्योग-धन्धों का विकास मध्यकाल के उत्तरार्ध में हुआ। उसके पहले गुजरात खासकर कच्छ अपनी हस्तकला के लिए ख्यात रहा है, जिसकी आज भी अपनी एक अनोखी पहचान बनी हुई है। हस्तकला के साथ-साथ कच्छ के शासकों की उद्योग-धन्धे सम्बन्धी दीर्घदृष्टि के कारण विदेशी टेकनोलॉजी का उपयोग कर यहाँ कई प्रकार के उद्योगों की स्थापना की गई, जिसमें रेशमी वस्त्र, इस्पात, अस्त्र-शस्त्र, इत्र, सोने-चाँदी की वस्तुएँ एवं जहाज़ निर्माण के उद्योग प्रमुख थे। जहाज निर्माण कला और वस्त्रों के लिए तो गुजरात को काफी मान मिला है। इन उद्योग-धन्धों के विकास में तत्कालीन शासकों द्वारा प्रदत्त सुविधायोग्य वातावरण व प्रोत्साहन का काफी हाथ रहा है।

तत्कालीन समय में जातिगत व्यवसाय प्रथा का प्रचलन था। प्रायः यह व्यवसाय वंशानुगत होते थे, और इसी लिए उन्हें उसमें दक्षता भी प्राप्त हो जाती थी, किन्तु यह व्यवसाय उनके जीविकोपार्जन के साधन मात्र ही थे। इन व्यवसायिक जातियों में भाट-चारण जाति को अपनी व्यवहारिक कुशलता के कारण राजकीय महत्व प्राप्त था। इन सब के अतिरिक्त जौहरी, सर्राफ जो बड़े व्यवसायकार थे उनका हाथ सदा ऊपर रहता था। छोटे व्यवसायकार उन्हीं की छत्रछाया में थे। छोटे और बड़े व्यावसायिकों के बीच की आर्थिक असमानता के कारण ही समाज में शोषण, गरीबी, दासता, चोरी, लूटपाट, भीख आदि दूषण पनपते थे, जो आज के समय में भी इतना ही सत्य है। मूलतः आर्थिक अभाव ही प्राचीनकाल से लेकर आज वर्तमान युग तक विघटन का कारण रहा है।

नगर संरचना सम्बन्धी विवरण से ज्ञात होता है कि नगर की सुरक्षा के लिए उसके चारों

ओर बड़ी खाई खोद देना अन्यथा बड़ा कोट बना देना सुरक्षा का सबसे उपयुक्त उपाय माना जाता था। सुरक्षा के अन्य उपायों में नगर में आने जाने के लिए कितने ही द्वार बनाये जाते थे और सब पर असंख्य सैनिकों का पहरा रहता था। आवास सम्बन्धी वर्णनों में उच्चवर्णन के लोगों के वैभवशाली निवासों का ही अधिकतर उल्लेख हुआ है, जो काफी विशाल हुआ करते थे और हर प्रकार की सुशोभन कला और सुविधाओं से परिपूर्ण हुआ करते थे।

आवागमन के साधनों में वृषभ-रथ, अश्व-रथ, रज-रथ आदि पशुओं द्वारा खींचे जानेवाले साधन थे। कहारों द्वारा उठाकर ले जानेवाले साधनों में डोला, पालकी, सुखपाल नामक उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। आजकल इनके दर्शन सिर्फ सुदूर ग्रामीण इलाकों में पारम्परिक शोभायात्राओं और विविध धार्मिक सीरियलों में ही होते हैं। इन यातायात के साधनों के अतिरिक्त यात्राओं में आनेवाली कठिनाइयाँ भी बहुत होती थीं।

सारांश यह है कि आर्थिक जीवन सम्बन्धी विवेचन से प्रकट है कि समकालीन आर्थिक जीवन में आजीविका के विविध साधनों तथा उनके अच्छे स्रोतों के होते हुए भी सामान्य जनता की दशा को बहेतर नहीं कह सकते । उनके जीवन में प्रायः ऐसे प्रसंग आया ही करते थे जबकि वह जीविकाविहीन होकर भिक्षावृत्ति अपनाने या कभी-कभी तो दास्यवृत्ति तथा पशुओं की भांति क्रय-विक्रय का लक्ष्य बन जाती थीं। वर्तमान युग में भी हम छोटे बच्चों तथा कन्याओं के क्रय-विक्रय जैसी खबरें सुनते रहते हैं। परिश्रम द्वारा जीवननिर्वाह की आशा रखनेवाला श्रमिक अथवा सेवक वर्ग भी आर्थिक चिन्ता से पूर्ण मुक्त न था। उससे बेगार ले ली जाती थी और वह अभाव की विभीषिका में पिसने को विवश हो जाता था। व्यापारियों की स्थिति कुछ अच्छी कही जा सकती है किन्तु यह केवल बड़े व्यापारियों तक ही सीमित थी। छोटे-छोटे व्यापार भी उक्त संकट से ग्रस्त थे। कर्ज लेने के प्रचलन को देखकर ही तत्कालीन कवियों ने व्यापारी और सामान्य जनता को इस विषचक्र से दूर रहने सम्बन्धी विचार व्यक्त करते हुए चेतावनी का सुर व्यक्त किया है।